RNI No. 7127/60 डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 अंक : 03 कुल पृष्ठ : 36 4 मार्च, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

राव मल्लीनाथ जी

रावळ मालो राजवी, राज करै धरम रूप।

वांरा हरचंद रा वहै, सागे सरग सरूप।।

संघशक्ति

4 मार्च, 2019

वर्ष : 56 अंक-03

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय – सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	08
भ्रातृ प्रेम के आदर्श : राव मल्लीनाथजी	श्री देवीसिंह माडपुरा	10
आध्यात्मिक रूपान्तरण	स्वामी यतीश्वरानन्द	13
गलत उपदेशों का गलत परिणाम	स्वामी सच्चिदानन्द	17
सद् बन्धन ही जीवन	श्री महिपालसिंह चूली	19
विचार-सरिता (एक चत्वारिंशत् लहरी)	श्री विचारक	20
संयम सदाचार का बल	मारकण्डेय पुराण से	22
प्रेरक कथानक	संकलित	23
भगवान श्रीकृष्ण की धर्मयुक्त दैवी राजनीति	श्री गौतम	24
शिक्षा	श्री पी. एन. सिंह	26
चेतना शक्ति का प्रादुर्भाव	श्री ओमसिंह	28
विशेष है स्त्री	श्रीमती मृदुला सिन्हा	29
अब और तब	श्री भँवरसिंह रेड़ी	30
वाणी एक अनमोल है	श्री वीरमसिंह सुरावा	33
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन :

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन का गठन किया गया है जो श्री क्षत्रिय युवक संघ के अनुषांगिक संगठन के रूप में कार्य करेगा। संघ संस्कार निर्माण के कार्य में संलग्न है। लेकिन समाज में अनेक विषय पर कार्य करने की आवश्यकता रहती है। इसलिए कार्य विस्तार आवश्यक बन जाता है। इसी आवश्यकता के अन्तर्गत श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन का गठन किया गया है।

समाज में सामाजिक भाव वाले युवाओं को सकारात्मक काम के लिये संयोजित करना। समाज में संवैधानिक मूल्यों के प्रति आदर भाव जाग्रत करना। समयानुकूल संवैधानिक साधनों एवं सरकारी योजनाओं के प्रति समाज में जागरुकता पैदा करना। राजनीतिक, प्रशासनिक, व्यवसायिक एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत युवा नेतृत्व के बीच सम्पर्क, सामञ्जस्य एवं सहयोग बढाकर उन्हें समाज के लिये अधिक उपयोगी बनाना। अन्य समाजों के प्रति सम्मान भाव पैदा करना। समाज के संभावनाशील युवा नेतृत्व को उभारना। इस क्षेत्र में श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन कार्य करेगा।

अगस्त माह तक जयपुर, सीकर, झुंझुनू, चूरू, बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, जालोर, सिरोही, पाली आदि जिलों में बैठकें की जाएगी और जिला स्तर की टीम गठित की जाएगी। उसके बाद इन जिला स्तरीय टीमों का दो दिवसीय शिविर आयोजित कर कार्य के विस्तार की योजना बनाकर कार्य किया जाएगा।

दंपती शिविर :

दो फरवरी से चार फरवरी तक बाड़मेर स्थित भारतीय ग्राम्य आलोकायन ट्रस्ट के आश्रम में संघ का दंपती शिविर आयोजित हुआ। इस बार दंपती शिविर में आयु वर्ग का कोई बंधन नहीं था। बुजुर्ग दंपतियाँ भी पहुँची तो युवा दंपतियाँ भी शिविरार्थी बनकर आई। एक दंपती तो ऐसी थी जिसका विवाह हुए एक सप्ताह भी नहीं हुआ था। सभी में परस्पर मेल जोल अनुकरणीय था। अधिकांश दंपतियाँ ऐसी थीं जो पहली बार ही इस आश्रम में आई थी। आश्रम अभी विकास के दौर में है फिर भी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ अनेक शिविर हो चुके हैं। मई 2018 में तो शिविर की संख्या साढे पांच सौ थी, तब भी किसी प्रकार की परेशानी नहीं हुई। यहाँ एक विवाह भी सम्पन्न हो चुका है जिसमें दोनों पक्ष संघ परिवार के ही थे।

रामलीला का मंचन होता है। पात्रों को अलग-अलग दायित्व निभाने को दिए जाते हैं। कोई राम बनता है तो कोई रावण। भूमिका निभाने वाले न राम हैं और न रावण। पर जितनी उत्तमता से अपनी भूमिका जो निभाता है, उसकी प्रशंसा होती है, उसे सफल कलाकार माना जाता है। हम अपने जीवन को भी एक नाटक मान लें और जो हमको भूमिका मिली है, उसे उत्तम तरीके से निभाएँ, यह भाव रखते हुए कि मुझे यह भूमिका ही मिली है अन्यथा न मैं किसी का हूँ और न मेरा कोई है। परमात्मा ने जो नाटक रचा है, उसमें हम सब पात्र अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे हैं। इस आसक्ति रहित भूमिका में ही जीवन की सार्थकता है। परिवार में पूरा दायित्व निभाएँ, प्रेम से रहें, पर आसक्ति न हो। यह बात विभिन्न प्रकार से संघप्रमुखश्री ने समझाई। स्वामी अड़गड़ानन्दजी के आश्रम से स्वामी अकेलानंद जी का कार्यक्रम भी एक दिन रखा गया, जिसमें बाड़मेर निवासी भी सम्मिलित हुए।

संघप्रमुखश्री का प्रवास :

संघप्रमुखश्री एक फरवरी को आलोकाय आश्रम बाड़मेर पहुँचे। 8 फरवरी को चोहटन पहुँचे, जहाँ छात्रावास में विद्यार्थियों से मिलन हुआ। स्नेह मिलन रखा गया। विरात्रा मंदिर में पहुँचे जहाँ प्रबन्धकों से सम्पर्क हुआ। 9 फरवरी को बाड़मेर क्षेत्र के ऐसे स्वयंसेवकों को बुलाया गया था जो अन्यत्र व्यस्त होने से शिविरों,

शाखाओं या अन्य कार्यक्रमों में लम्बे समय तक नहीं आ पा रहे। ऐसे स्वयंसेवकों से दिन भर चर्चा हुई। रात को भी वे रुके और चर्चा चली। सुबह दस बजे बाद सब रवाना हुए। संघप्रमुखश्री भी जैसलमेर के लिये रवाना हुए।

जैसलमेर में 10 फरवरी को स्नेह मिलन कार्यक्रम में स्वयंसेवक व सहयोगी उपस्थित रहे। स्वयंसेवक रात में भी रुके और चर्चाएँ चलती रही। 11 फरवरी को महिलाओं और बालिकाओं का कार्यक्रम रखा गया। संघप्रमुखश्री के जैसलमेर आगमन का समाचार पाकर, स्वामी प्रतापपुरी जी, पूर्व विधायक छोटूसिंह, सांगसिंह व जालमसिंह सतो भी मिलने आए। 12 फरवरी को संघप्रमुखश्री बाड़मेर लौट आए। समाचार पाकर मिलने वाले आते रहे। 14 फरवरी को मरुधर छात्रावास के वार्षिक उत्सव में सम्मिलित रहे और 15 फरवरी को रवाना होकर 16 फरवरी को जयपुर पहुँचे। जहाँ से बीकानेर प्रवास के लिये रवाना हुए।

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि	
01.	उ.प्र.शि.	18.05.2019 से 28.05.2019	गनोड़ा (बाँसवाड़ा)	– लिटिल एंजल्स सीनियर सैकण्ड्री स्कूल। शिविर स्थान होगा जो गनोड़ा में बेणेश्वर रोड़ स्थित कल्याणनगर में है। – जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर आदि स्थानों से गनोड़ा के लिये बस हैं। – जयपुर से बांसवाड़ा के लिये एक बस वाया गनोड़ा भी है। – गुजरात से आने वाले सामलाजी होते हुए डुँगरपुर पहुँचें, वहाँ से गनोड़ा के लिये बस है। – ट्रेन से उदयपुर आकर वहाँ से गनोड़ा के लिये बस है। – गणवेश व आवश्यक सामग्री लेकर आएँ।
2.	उ.प्रा.शि. (बालिका)	31.05.2019 से 06.06.2019	पुष्कर (अजमेर)	– जयमल कोट पुष्कर। कम से कम 8वीं पास और पूर्व में शिविर की हुई बालिकाएँ ही आ सकती हैं। गणवेश लेकर आएँ।
3.	मिलन शिविर	07.06.2019 10.06.2019	बाड़मेर	– भारतीय ग्राम्य आनोकायन ट्रस्ट द्वारा संचालित आश्रम शिविर स्थान होगा। – आमंत्रित स्वयंसेवक ही आ सकेंगे। – आमंत्रित स्वयंसेवक पूरा शिविर न कर सकें तो कम-से-कम दो दिन के लिये आ सकते हैं।

दीपसिंह बेण्यांकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख
श्री क्षत्रिय युवक संघ

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर भारतीय ग्राम्य आलोकान आश्रम बाड़मेर में 16 मई, 2018 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्बोधित प्रभात संदेश)

शिविर में जो निर्देश दिये जाते हैं, वे पालन करने के लिये होते हैं और यदि उन निर्देशों का पालन नहीं किया जाए तो आप समझते ही हैं कि फिर निर्देशों का कोई अर्थ नहीं है। आपने यहाँ के प्रवचनों में सुना होगा कि हम क्या करें और क्या नहीं करें, इसके लिये शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र के अनुसार करें, उसके विपरीत नहीं करें। शास्त्र क्या है? शास्त्र वह ईश्वरीय ज्ञान है जो हमारे आदि-पुरुषों ने अपनी साधना के द्वारा, अपनी तपस्या के द्वारा प्रकट किया। वह ज्ञान उनका नहीं, उनको ईश्वर का दिया हुआ ज्ञान है, इसीलिए वेद को अपौरुषेय कहते हैं। वेद का अर्थ है ईश्वर द्वारा मनुष्य को मिली प्रथम जानकारी। यह ज्ञान धीरे-धीरे लोप होता जाता है।

गीता में भगवान कृष्ण यही बात स्पष्ट रूप से कहते हैं कि 'हे अर्जुन! जो अविनाशी योग मैं तुमको प्रदान कर रहा हूँ वह ज्ञान सबसे पहले मैंने सूर्य को दिया था। सूर्य ने मनु को दिया। मनु ने इक्ष्वाकु को दिया और इक्ष्वाकु से राजऋषियों ने जाना और यहाँ आकर वह धीरे-धीरे लोप हो गया। उस लोप हुए ज्ञान को मैं पुन: तुमको दे रहा हूँ।' गीता एक पठनीय शास्त्र है। एक अनुकरणीय शास्त्र है। कुछ लोगों को लग सकता है कि रामायण भी तो है न, वह तो इससे भी पुराना है। गीता के चौथे अध्याय के अनुसार तो जो आदि काल में दिया गया, वही सबसे पुराना है। गीता का हो, रामायण का हो, अथवा वेद का हो। गीता में स्पष्ट कहा है कि जो शास्त्र-विधि को त्याग कर अपने मन से नया रास्ता निकालता है और उसके अनुसार कर्म करता है, वह कर्म अविधिपूर्वक है। जो अविधि पूर्वक किया गया कर्म है, उसका फल नष्ट भी हो सकता है और विपरीत भी हो सकता है।

यहाँ शास्त्र क्या है? शिविर में जो बताया जा रहा है, वही शास्त्र है। उसका यदि हम पालन करते हैं तो हम ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। हम पालन कर रहे हैं या नहीं कर रहे, यह कौन बताएगा? हम सोचते हैं, हमारा घट प्रमुख बताएगा। यदि घट प्रमुख भूल जाए तो कौन बताएगा? सोचते हैं शिक्षक बताएगा। शिक्षक भी भूल जाए, क्योंकि भूल होनी तो स्वाभाविक है, तब कौन बताएगा? किसी दूसरे के भरोसे पर न रहें। सावधान रहें, अपना ध्यान हम स्वयं रखें कि मैं शास्त्र विधि से कार्य कर रहा हूँ या नहीं। शास्त्र विधि से किये गये कार्य का फल शीघ्र मिलता है, अवश्य मिलता है और वह नष्ट भी नहीं होता है। शास्त्र विधि को त्याग कर जो कर्म किया जाता है उसका फल विलम्ब से मिलता है, विपरीत भी मिल सकता है और मिलकर नष्ट भी हो सकता है। अत: हमको क्या काम करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, इसका निर्णय हमारा स्वयं का हो। शास्त्र हमारी सहायता करता है, घट प्रमुख या शिक्षक भी हमारी सहायता करता है।

रामायण बहुत अच्छा ग्रन्थ है। मैं उसको पारिवारिक और सामाजिक ग्रन्थ कहता हूँ। परिवार में किस प्रकार रहना चाहिए, समाज में किस प्रकार रहना चाहिए, किस प्रकार की मर्यादाओं का पालन किया जाना चाहिए, इसके लिये रामायण से बढकर कोई शास्त्र नहीं हो सकता। किन्तु आध्यात्मिक दृष्टिकोण से हम देखना चाहें तो गीता पूरी आध्यात्मिक है और रामायण में अध्यात्म को ढूंढना पड़ता है। अध्यात्म क्या है? अपनी आत्मा के अधीन होकर के कर्म करना। आत्मा किसी की मरी नहीं है और आत्मा कभी भी मर नहीं सकती। उस पर अनेकों आवरण आ जाते हैं। मन का, बुद्धि का, अहंकार का, बाहरी प्रदूषण का आवरण आ जाता है, तब हम उसकी आवाज सुन नहीं सकते और उसके अधीन होकर कर्म नहीं कर सकते।

क्षत्रिय युवक संघ का कार्य है, उन आवरणों को

हटाने का। सत, रज और तम यह जो त्रिगुणात्मक सृष्टि के गुण हैं, संघ में हम उनका संतुलन करते हैं, उनको नियमित करते हैं। दूसरी तरह कहें तो गुणों का अर्जन करना, उनका संरक्षण करना, उनका संवर्धन करना और जो दोष हैं, उनको निकाल कर दूर करना। धीरे-धीरे आत्मा पर आए आवरणों को हटाना। हम अनेकों दोष लिए बैठे हैं। कोई दोषों को रखना नहीं चाहता यह भी नहीं चाहता कि हमारे गुण प्रकट न हों। परन्तु हमारे ऊपर तमस का प्रभाव रहता है। जैसे प्रात:काल शंख बजता है, सभी जानते हैं कि यह उठने, जागने का शंख है फिर भी उठ नहीं पाते। नींद आती है, यह स्वाभाविक है। यह शरीर जड़ है और जड़ता हावी हो जाती है इसलिए उठ नहीं पाते। आपको दोष देते हैं, आपको डांटते हैं लेकिन जो आपके अन्दर जड़ता है, उसको दूसरा कोई नहीं हटा सकता। घट प्रमुख कहता है कि इस मटकी का पानी पीओ और अन्य मटकी का मत पीओ। यह पानी पीने का है, यह स्नान करने का है लेकिन हमारी लापरवाही से हम गलत कर बैठते हैं। हमारे समझ में आती नहीं। यह आपकी जड़ता का दोष है, पर कोई जान-बूझकर नहीं करता, आपका तामसिक स्वभाव यह करा देता है। शिविर में आपके तमस को दबाकर, रज को पनपाकर, सत का विकास किया जाता है। तब हमको जागना पड़ेगा। अभ्यास से सुबह चार बजे जागते हैं। जो जड़ता हम पर हावी रही है, उसमें यह कार्य कठिन है लेकिन यह साधना का मार्ग है, जो आसान नहीं होता।

शिविर में पहले दिन आपको बताया था कि आप तपस्या के मार्ग पर कदम बढा रहे हैं। तब कठिनाई तो आएगी, कष्ट तो होगा। जो कष्ट से डर जाता है, वह साधक नहीं बन सकता। हमको साधक बनना है और साधक ही अपनी साधना के द्वारा सिद्ध बन सकता है। हम पर तमस का इतना प्रभाव पड़ता है कि हम सोये-सोये से रहते हैं। चाहे दस शिविर कर लें पर यदि इस तमस को नियंत्रित नहीं करेंगे तो जागृति कैसे आएगी? घरों में माताजी बालक को उठाती है तो कहते हैं-माताजी प्लीज पाँच मिनट सो लेने दो। यह कौन कहता है? यह हमारा तमस कहता है। घट प्रमुख यहाँ उठाना चाहता है, वह कई बार डांट के लहजे में जोर से बोल देता है तो बुरा लगता है। घट प्रमुख को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि यह दोष स्वयंसेवक का नहीं है। यह जो तामसिक आदत लेकर आया है, वही प्रकट हो रही है। मैं कैसे इसकी सहायता करूं, यही भाव रखना चाहिए। घट प्रमुख हमको पंक्ति में खड़ा करना चाहता है, साधना मार्ग पर ले जाना चाहता है, तब वह यही ध्यान रखता है कि मैं किस प्रकार इसकी सहायता करूं ताकि शीघ्रातिशीघ्र यह विकास की ओर बढे। आप स्वयं अपनी सहायता करें, अपने समूह की सहायता करें तो काम शीघ्र हो सकता है। आज शिविर का छठा दिन है और यदि आज भी यह सिखाना पड़े कि दक्ष में कैसे खड़े रहते हैं, आराम में कैसे खड़े रहते हैं, कार्यक्रम में बैठे हैं तो नींद न लें आदि-आदि तो इसका अर्थ होता है, हमारे तमस को हम दबा नहीं पाए।

मैं जागने की बात कह रहा हूँ-तो जागने के बाद उठना रहता है और उठने के बाद चलना रहता है। चलने के बाद अपने लक्ष्य के समीप जाना रहता है। जब हम लक्ष्य के समीप जाएंगे तभी लक्ष्य की उपासना होगी। पर यह सब कौन कर सकता है? वही जो बलवान है। जो तन से, मन से, बुद्धि से, आत्मा से बलवान है, वही कर सकता है। अत: पहली बात तो स्पष्ट कर लें कि क्षत्रिय युवक संघ का कार्य साधना का कार्य है और साधना का कार्य कमजोर व्यक्ति का नहीं है। जो कमजोरी लेकर हम यहाँ आएँ हैं, उस कमजोरी को दूर कर मजबूती लानी है, बलवान बनना है। लेकिन बलवान बनने में संकल्प तो स्वयं का ही काम आएगा। संकल्प में समाज चरित्र का ध्यान रखना पड़ता है, समूह चरित्र को ध्यान रखना पड़ता है, राष्ट्र चरित्र का ध्यान रखना पड़ता है, तब जाकर इन्सान बनता है।

जिसको एकाकी साधना करनी है कि मुझे तो सिर्फ ईश्वर ही प्राप्त करना है। न माता से, न पिता से, न पत्नी से, न पुत्र से, न संसार से कुछ भी लेना-देना

(शेष पृष्ठ 9 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

संसार में दो तरह के लोग हैं- एक आस्तिक और दूसरे नास्तिक। आस्तिक वे हैं जो ईश्वर में विश्वास करते हैं, उनकी उनके प्रति आस्था है, और वे ईश्वर को अपना आराध्य मानते हैं। अपने जीवन का आधार वे अपने आराध्य को ही मानते हैं। नास्तिक किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करते। वे ईश्वर को मानते ही नहीं। उनका कोई ईश्वर-आराध्य नहीं है।

जो आस्तिक हैं, उनकी भी दो श्रेणियाँ हैं- सगुणोपासक व निर्गुणोपासक/सगुणोपासक और निर्गुणोपासक के बीच एक बड़ा भारी भेद यह है कि एक के आराध्य और अनुसन्धेय सगुण साकार प्रत्यक्ष मूर्तिमान हैं, उनका जो कुछ वर्णन किया जाता है, उसे समझने में कोर्ठ कठिनाई नहीं होती और दूसरे के आराध्य और अनुसन्धेय निर्गुण निराकार अलख-निरंजन है, उनके विषय में जो कुछ कहा जाता है, उनका मर्म सहसा समझ में नहीं आता। सगुणोपासक जिन हृदयेश को बाहर देखते हैं, निर्गुणोपासक उन्हीं को अपने अन्दर अनुभव करते हैं और जिन्हें अलख निरञ्जन कहते हैं, सगुणोपासक की आँखें उन्हीं को बाहर देखा करती है और उन्हीं के आकर्षण का अञ्जन लगाये रहती हैं। दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं।

पूज्य श्री तनसिंहजी तो शुरू से ही पूरे नास्तिक थे। वे ईश्वर के नाम पर चिढा करते थे। उनका सोच था कि जब ईश्वर है तो उनके राज्य में ये अत्याचार व अन्याय क्यों? वे ईश्वर को एक बकवास मानते थे। उनके सामने कोई ईश्वर-परमेश्वर की बात करता तो वे उनकी बातों में कतई विश्वास नहीं करते थे, वे पूरे नास्तिक थे। पर क्षत्रिय समाज में जन्म होने के कारण क्षत्रिय समाज को देखने व समझने का उन्हें पूरा अवसर मिला। उस वक्त क्षत्रिय समाज की बुरी भटकाव की गत थी। वे उनकी लड़खड़ाती जिन्दगी को पुन: पटरी पर लाना चाहते थे। उनके सम्बल बनकर उनकी सेवा करना चाहते थे, पर ये सब बिना शक्ति सम्भव नहीं था। क्षत्रिय हमेशा शक्ति के पुजारी रहे हैं इसलिये उन्होंने माँ शक्ति के शरण में जाने का निर्णय लिया।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने लिखा है-''मैं पूरा नास्तिक बन चुका था। ईश्वर के नाम पर मैं चिढा करता था। उसे भरपेट गाली देकर जी हल्का करता था, क्योंकि मैं उसके राज्य में अन्याय देख रहा था। क्षत्रिय-जन की जमात में आया, तो क्षत्रिय परम्परा की विचारधारा ही ऐसी थी, जिसमें नास्तिक होने पर ढाँचा बैठता ही नहीं। मुझे मेरे क्षत्रिय बन्धु ईश्वर से भी प्रिय थे और उनके लिये मुझे ईश्वर को मानना पड़ा, किन्तु मेरी मान्यता मात्र बौद्धिक ही थी, अन्त:करण से ईश्वर में कोई आस्था नहीं थी।''

पूज्य श्री तनसिंहजी को अपना क्षत्रिय समाज ईश्वर से भी अधिक प्रिय था, पर अपने प्रिय समाज का सर्वस्व छिन चुका था। समाज अन्धेरे में ठोकरें खा रहा था, न कुछ करने की हिम्मत थी, न जागृति और न चेतना। समाज पतन की राह पर था। जागृति व चेतना के जो भी प्रयास हो रहे थे, वे पर्याप्त नहीं थे। प्रयास नाकामयाब रहने से निराशा ही हाथ लगी। चारों ओर हताशा ही पसरी हुई थी। सहयोगी व सहायक कोई नहीं था। इस निराशा की घड़ी में चिन्तित होकर माँ की शरण में जाने का निश्चय किया और दृढ़ संकल्प के साथ एक निर्जन पर्वत पर चले गये।

पूज्य श्री तनसिंहजी जिस निर्जन पर्वत पर गये, वह स्थान ''वैर का थान'' के नाम से जाना जाता है। जहाँ माँ शक्ति का मन्दिर है। इसी मन्दिर में उन्होंने माँ शक्ति की आराधना की थी।

राजस्थान के बाड़मेर जिले में स्थित चौहटन के पश्चिम में पहाड़ है। इस पहाड़ के मध्य में बहुत ऊँचाई

पर माँ शक्ति का एक छोटा-सा मंदिर है। मन्दिर के सामने, माँ शक्ति के प्रांगण के पास एक निर्मल व ठण्डे पानी की बेरी (छोटा कुआ) है, जो ज्यादा गहरी नहीं है। इस बेरी में पहाड़ी से झरने का पानी आता रहता है। माँ के भक्त इसी पानी को माँ का चरणामृत समझकर बड़े चाव से पीते हैं और पीकर अपने आपको धन्य महसूस करते हैं।

इस पहाड़ के पश्चिम से, पहाड़ की तलहटी से चलकर माँ के भक्त लोग मन्दिर तक पहुँचते हैं। अब तो उबड़-खाबड़ जगहों को काट-छांट कर मन्दिर तक सीढियाँ बना दी गयी हैं जिनके सहारे भक्तजन, श्रद्धालु माँ के दर्शनों के लिये आते-जाते रहते हैं, पर जिस समय पूज्य श्री तनसिंहजी माँ की शरण में पहली बार माँ के यहाँ आये, उस वक्त मन्दिर तक पहुँचने का कोई सुगम रास्ता नहीं था। तलहटी से लेकर मन्दिर तक उबड़-खाबड़ जगह थी। गहरी खाइयों, घाटियों, झाड़ियों, कंटीले पेड़ व उबड़-खाबड़ चट्टानों से अटा यह पहाड़, रास्ते का नाम ही नहीं। हर किसी के लिये माँ के मन्दिर तक पहुँचना संभव नहीं था। माँ का सच्चा भक्त ही माँ की कृपा से माँ के मन्दिर तक पहुँचता था। पूज्यश्री ने आर्त भाव से माँ को पुकारा और माँ ने अपने भक्त को अपनी शरण में बुला लिया।

वैसे देखा जाय तो माँ के प्रांगण में कोई डर नहीं है। पर जिनका माँ में अटल विश्वास नहीं है, उनके लिये यह जगह अत्यधिक डरावनी है, भयभीत करने वाली है। विशेषकर रात तो अत्यधिक डरावनी व भय पैदा करने वाली होती है। जब हवा चलती है तो वह पहाड़ियों, घाटियों, झाड़ियों व पेड़ों से गुजरती ऐसी आवाज व कम्पन पैदा करती है जिससे कलेजा काँप उठता है। इसी तरह पहाड़ में पक्षियों की आवाजाही व उड़ने से उनके पंखों से भी पहाड़ गूँज उठता है, वह गूँज भी अत्यधिक भयभीत करने वाली होती है। इसके अलावा वहाँ जंगली जानवरों का भी डर था इसलिये वहाँ एक व्यक्ति का टिकना (रुकना) सम्भव नहीं, भाग छूटते थे। ***(क्रमशः)***

पृष्ठ 7 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

है। उसके लिये क्षत्रिय युवक संघ मार्ग नहीं है। वह भी एक मार्ग है लेकिन क्षत्रिय युवक संघ तो कहता है कि परिवार में, संघ में, समाज में, राष्ट्र में रहते हुए भी ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। आसक्ति रहित होकर दायित्व निभायें तो ये सब हमारे सहयोगी हैं। परिवार सहयोगी है, पत्नी सहयोगी है। लेकिन यदि परिवार में लिप्त हो गए, भोग में पड़ गए तो जो भोगी है, वह रोगी है और वह योगी नहीं हो सकता। हमको योगी बनना है। योगी का अर्थ है योग करने वाला, मिलने वाला। योग का अर्थ है मिलना। किसका मिलना? आत्मा और परमात्मा का मिलना। हमको ईश्वर से मिलना है और यही हमारा अध्यात्म है। उसके लिये संघ एक सामुहिक साधना है। सामुहिक साधना में कभी-कभी हम यदि कोई गफलत कर लेते हैं तो समूह के लोगों को बिगड़ने का अवसर मिल जाता है। पर सामुहिक साधना में समूह से सहायता भी मिलती है।

मैं आपके साथ व सामने ही रहता हूँ। मुझे दिखाई देता है कि कहाँ-कहाँ गड़बड़ है। कौन चल रहा है, कौन आ रहा है, कौन जाग रहा है, कौन कई शिविर करने के बाद भी सो रहा है। पर मेरे क्रोध करने से तो कुछ होगा नहीं। आप स्वयं अपने ऊपर क्रोध करें कि मुझ पर तमस क्यों छाया हुआ है, मुझे और कितने शिविर करने की आवश्यकता है, कितना अभ्यास अभी और करना है कि तमस से मेरी जागृति प्रारम्भ हो जाए। इस पर हर व्यक्ति स्वयं विचार करे क्योंकि संस्कारित होना बहुत दूर की बात है। समाज चरित्र को ग्रहण करना बहुत-बहुत दूर है। राष्ट्रीय चरित्र को ग्रहण करना बहुत दूर है। लेकिन हमको तो इसी मार्ग पर बढना है, इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है। तो हमको तो चलते रहना है, जब तक लक्ष्य न मिल जाए। चरैवेति-चरैवेति। आज की प्रभात में क्षत्रिय युवक संघ का यही मंगल संदेश है।

जय संघशक्ति!

भ्रातृ प्रेम के आदर्श : राव मल्लीनाथ जी

- देवीसिंह माडपुरा

संयुक्त परिवार में जब तक भाई-भाई साथ रहते हैं, तब तक उनमें आपसी सौहार्द बना रहता है। क्योंकि जब तक परस्पर हित नहीं टकराते तब तक उनमें आपसी प्रेम ही दिखाई देता है। असल में उस भ्रातृ-प्रेम की वास्तविक परीक्षा तभी होती है, जिस समय उनके अलग-अलग होने की घड़ी आती है। जिस वक्त भाइयों में आपसी बटवारे होते हैं तभी हमारे प्रेम, त्याग, मर्यादा और नीति का भी मूल्यांकन होता है। साधारणतया पारिवारिक बटवारों में सौहार्द और संतोष की जगह लड़ाई-झगड़े और वैर-विरोध ही दिखाई देता है। इसमें सामान्य परिवारों से लेकर सम्पन्न और पढे-लिखे तथा पुराने ठिकानेदारों तक सभी का एक जैसा ही हाल दिखाई देता है। आजकल तो ज्यादा सम्पन्न और तथाकथित धनाढ्य परिवार तो कोर्ट-कचहरी तक की यात्रा भी कर आते हैं। हमारे विगत इतिहास, विशेषकर भारत में मुसलमानों के बाद, का दृश्य भी इससे कुछ अलग नहीं रहा है। राज्य सत्ता के लिये मारकाट, धोखेबाजी और न जाने कैसे-कैसे पाप कर डाले, जिसका यदि विश्लेषण किया जाए तो लगता है कि स्वार्थ के लिये किस रिश्ते को नहीं रंगा। लेकिन ऐसे स्वार्थपूर्ण कृत्य समाज के आदर्श नहीं बन सकते।

हमने अपनी संस्कृति को तो हमेशा त्याग, बलिदान और निस्वार्थता के साथ ही अपनाया है। हाँ, यह अवश्य है कि ऐसे अनुकरणीय उदाहरण इतिहास में बिरले ही मिलते हैं। स्वार्थ और संकीर्णता के ऐसे दौर में भी कहीं-कहीं ऐसे आदर्श प्रेम और त्याग की बेजोड़ मिसालें भी मिलती हैं जो आज भी हमको गौरवान्वित करती हैं और आने वाली पीढियों तक वे हमारा मार्गदर्शन करती रहेगी।

ऐसा ही एक प्रसंग मालानी परगने के तत्कालीन शासक माल जी का है, जो आगे चलकर राव मल्ली नाथजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। कन्नौज पति जयचंद जी की पराजय के बाद राठौड़ों का मारवाड़ में आगाज माना जाता है।

बारहसौ बारोतरो, पाली कियो प्रवेश।
सीहो कन्नौज छोड़ के, आयो मरुधर देश।।

सीहाजी का आगमन बारहवीं सदी के अन्त भी माना जाता है। सीहाजी के पुत्र-पौत्रों ने खेड़ पर अपना राज्य स्थापित किया और इसी इलाके में आगे की पीढियों तक संघर्षरत रहे। सीहाजी की नवीं पीढ़ी में राव सलखाजी हुए। सलखाजी के चार पुत्रों में मालजी (मल्लीनाथजी) सबसे बड़े थे। परम्परा अनुसार वे ही यहाँ के शासक बने। मल्लीनाथ जी अपने समय के वीर योद्धा और कुशल प्रशासक माने जाते हैं। मल्लीनाथ जी के अलावा उनके तीन छोटे भाई वीरमजी, जैतमालजी और सोभितजी थे।

समय के साथ परिवार और राज्य का विस्तार हुआ। मल्लीनाथ जी ने अपने भाइयों को अलग-अलग जागीरें देकर व्यवस्था को सुदृढ़ और सुचारू बनाया। मल्लीनाथ जी के लिये कहा जाता है कि वे अपने भाइयों से अत्यधिक प्रेम करते थे और चारों भाई एक-दूसरे के लिये त्याग करने में ही अपना अहोभाग्य मानते थे।

सदैव समय एक जैसा नहीं रहता। राव मल्लीनाथ जी का एक विवाह बला परमार के यहाँ हुआ। इन्हीं राणी रूपादे के सत्संग से उनके जीवन में आमूल चूल परिवर्तन हुआ। राणी रूपादे से प्रभावित मल्लीनाथ जी ने नाथ सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण कर साधना मार्ग अपनाया। यहाँ वाणियों और जनश्रुतियों में रूपादे-रावमाल के नाम से भजन और वाणियाँ आज भी गाये जाते हैं। मल्लीनाथ जी ने अपनी साधना में ही तल्लीनता लाने के लिये इस पड़ाव पर आकर अपने राज्य का भार अपने बड़े पुत्र कुंवर जगमाल को सौंप दिया और स्वयं एक संरक्षक की भूमिका में ही रहने लगे।

मल्लीनाथ जी को अपने भाइयों से जितना प्रेम था, उनके पुत्र कुँवर जगमाल का स्वभाव बिल्कुल इसका

उल्टा था। इसलिये कुँवर जगमाल के साथ वीरमजी आदि का मनोमालिन्य बढने लगा। एक बार एक घोड़ी को लेकर चाचा-भतीजे में इतना तनाव पैदा हो गया कि आपस में लड़ने पर उतारू हो गए। मल्लीनाथ जी को दखल देनी पड़ी। कुँवर जगमाल को तो युद्ध से विरत वापस खींच लाए, लेकिन वीरमजी जोइये को पहुँचाने के बहाने चले गए। मल्लीनाथजी ने वीरमजी को वापस आने की सौगंध देकर जाने की आज्ञा दी। लेकिन वीरमजी ने जोइयों के साथ ही रहना ठीक समझा। वे कभी लौटकर नहीं आए।

ये जोइये वे राजपूत थे, जो मुसलमान बन गए थे। मल्लीनाथ जी की शरण में आकर रहने लग गए थे। इनके पास एक उच्च नस्ल की घोड़ी थी। उसको लेकर ही जोइयों से कुँवर जगमाल का विवाद हो गया था। कुंवर इस घोड़ी को लेना चाहते थे लेकिन जोइयों ने देना स्वीकार नहीं किया। तब कुँवर ने जोइयों को मारकर घोड़ी छीन लेने की ठान ली। जोइयों को जब इसका पता लगा तो उन्होंने वीरमजी के पास जाकर अपनी रक्षा की याचना की और वह घोड़ी वीरम जी को भेंट कर दी।

वीरमजी ने जोइयों को कुँवर जगमाल के कुपित होने पर बचाया था, इसलिए शुरू-शुरू में उनके आपसी मेलजोल बहुत अच्छा रहा। जोइयों ने अपनी जमीन व जागीर में से वीरमजी का हिस्सा अलग करके दिया। लेकिन ज्यों समय बिता कतिपय कारणों से वीरमजी और जोइयों के बीच विवाद होने लगे। वैर-विरोध धीरे-धीरे इतना बढ गया कि अनेकों प्रयत्नों के बाद भी उनका आपसी युद्ध टल न सका। उस युद्ध में जोइयों के भी अधिकतर भाई मारे गये और वीरमजी भी अपने साथियों सहित काम आये।

उस समय वीरमजी के पुत्र चुण्डा की आयु मात्र एक वर्ष की थी। वीरमजी का परिवार गाँव बडेरण से मारवाड़ आते समय वीरमजी की राणी (चुण्डा जी की माता) ने शिशु चुण्डा को धाय को सौंपकर स्वयं सती हो गई। एक वर्ष के बालक चुण्डा के सिर से माता और पिता दोनों का साया उठ चुका था।

प्रारम्भ में चुण्डा का लालन-पालन वर्तमान शेरगढ तहसील के कलाऊ गाँव के आलाजी चारण के यहाँ हुआ। कुछ बड़ा होने पर आलाजी चुण्डा को लेकर मल्लीनाथजी के पास आए। मल्लीनाथजी चुण्डा को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उसको अपने संरक्षण में रखा। किशोरवय तक चुण्डा उनके पास ही पला-बढा। चुण्डा के लिये माँ और पिता, दोनों की भूमिका मल्लीनाथ जी के ही जिम्मे थी।

एक दिन मल्लीनाथ जी ने अपने बड़े पुत्र कुंवर जगमाल से चुण्डा के लिये गुहार लगाई कि तुम चुण्डा को कुछ गाँवों की जागीर देकर बसाओ। लेकिन कुँवर जगमाल अपने स्वभाव अनुसार मल्लीनाथ जी की आज्ञा पाकर भी चुण्डा को जागीर देने को राजी नहीं हुए। मल्लीनाथ जी कुंवर के इस व्यवहार से अत्यन्त दुखी हो गये। मल्लीनाथ जी ने एक बार फिर कुँवर जगमाल से इस प्रकार कहा कि तुम मेरे मरणोपरान्त धर्मार्थ गाँव या जागीर तो दोगे ही, वही दान तुम मुझे इस समय ही दे दो तो मैं इसको देकर बसा दूँ। मल्लीनाथ जी की यह बात सुनकर कोई पत्थर दिल भी पानी हो जाता। इससे अधिक एक बाप अपने बेटे से क्या कह सकता था। लेकिन पिता की इस हृदय स्पर्शी पीड़ा को भी कुंवर जगमाल महसूस नहीं कर पाये और उल्टा कुतर्क पूर्वक जवाब दिया कि मरने का क्या पता पहले आप मरोगे या मैं मरूँगा। फिर क्या था, संत हृदय मल्लीनाथ जी इससे अधिक सहन नहीं कर सके और अपने भक्त हृदय से यों शब्द बाण चला दिये।

जाओ-माले रा मढे और वीरम रा गढे

माले रा मढे, इस पहले वाक्य से स्वयं की संतान को ही अभिशप्त किया और दूसरे वाक्य से अपने भाई के वंश को पारितोषित कर दिया।

हर राज्य स्थापना की नींव में सेवा, त्याग, तपस्या और आशीर्वाद की शिलाएँ तो लगती ही हैं। मल्लीनाथ जी ने चुण्डा के भविष्य में होने वाले राज्य की नींव अपने इस आशीर्वाद से रख दी थी।

मल्लीनाथ जी के पहले वाक्य का भाव था कि मेरी संतति मढे, अर्थात् धोरों में रहेगी और वीरम के वंशज गढे, अर्थात् गढ पति होंगे। न मालूम कुंवर जगमाल को अपनी भूल का कभी अहसास हुआ या नहीं। लेकिन मल्लीनाथ जी ने भ्रातृ प्रेम और न्याय की तराजू पर ऐसा फैसला किया जो सदियों तक समाज में नजीर बनकर मार्गदर्शन करता रहेगा। माले रा मढे और वीरम रा गढे की उक्ति प्रसिद्ध हो गई।

किसी के लिये यह मात्र कुछ शब्दों की तुकबंदी ही हो सकती है, लेकिन एक पिता के लिये वह क्षण कितना मार्मिक रहा होगा, जब अपनी ओरस संतान और भाई की संतान के बीच न्याय करने की वेला उपस्थित हुई होगी। यही वह परीक्षा की घड़ी होती है जिसमें संत, महात्मा, महापुरुष बिना एक पल गंवाए निर्णय ले लेते हैं। मल्लीनाथ जी ने न्याय कर दिया था। आगे चलकर वैसा ही हुआ। चुण्डा जी को कुंवर जगमाल की पाँच गाँवों की जागीर की जगह मल्लीनाथ जी के भक्त हृदय से आशीर्वाद का अकूत धन मिल गया।

मंडोर पर इन्दा (पड़िहार) राजपूतों और मुसलमानों के बीच संघर्ष चल रहा था। चुण्डा की सहायता पाकर इन्दाओं ने मुसलमानों को वहाँ से खदेड़ दिया। इन्दों ने इस राज्य को चुण्डा जी को उपहार स्वरूप देकर अपना दामाद भी बनाया। चुण्डा की पीढियों ने आगे खूब राज्य विस्तार किया। वर्तमान की जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ आदि रियासतें चुण्डा जी के वंशजों ने ही स्थापित की थी। वर्तमान में जोधपुर, पाली, जालोर, नागौर, अजमेर, बीकानेर, चूरू, श्रीगंगानगर आदि जिलों में रहने वाले राठौड़ अधिकांशत: चुण्डाजी के वंशज ही हैं। मल्लीनाथजी के वंशज मालानी परगने, वर्तमान बाड़मेर जिले तक ही सीमित रहे।

इतिहास में बहुत कम ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिसमें अपने हित से पहले भाई का हित देखने का भाव परिलक्षित होता हो। भगवान राम ने कहा था,-'रघुवंश की सभी परम्पराएँ श्रेष्ठ हैं, परन्तु चारों भाइयों में मैं अकेला राजा बनूँ यह परम्परा मुझे पसन्द नहीं है।' त्याग और बलिदान की ऐसी बेजोड़ मिसालें चाहे कम ही मिलती हैं, लेकिन हमारी संस्कृति का हिस्सा तो ये परम्परायें ही रहेगी। वह त्याग सदियों तक हमको गौरवान्वित करने के साथ-साथ प्रेरणादायी बनकर आने वाली पीढियों का मार्गदर्शन भी करता रहेगा। ऐसे ही त्याग और बलिदान की कीमत पर यह समाज का दिव्य स्वरूप निर्मित हुआ है।

वर्तमान समय में तो ऐसे त्याग की ही आवश्यकता है, जिससे हमारे इस जर्जर होते सामाजिक ढाँचे को बचाया जा सके। भविष्य के लिये भी त्याग ही वह पूंजी है जिसकी नींव पर जाति और समाज का भवन शोभायमान बन सक्ता है। समय-समय पर ऐसे ही त्याग की आहुति देकर इस परम्परा को जीवित रखा गया है। इसी से आज हम क्षत्रिय कहलाने में गौरव अनुभव करते हैं।

इस परम्परा को पुनर्जीवित करने के प्रयास का ही दूसरा नाम वर्तमान का श्री क्षत्रिय युवक संघ है।

मल्लीनाथ जी के त्याग को हमने याद रखा या भुला दिया, यह हमारी कृतज्ञता के भाव पर निर्भर है। लेकिन उनका यह संदेश सदियों तक समाज में गुंजायमान होता रहेगा। वर्तमान के परिप्रेक्ष में परिवार के बड़े भाई की भूमिका कैसे वहन की जानी चाहिए, यह मल्लीनाथ जी के इस प्रसंग से सभी को सीखनी चाहिए। आज बड़ा भाई छोटे भाई से सम्मान प्राप्ति की अपेक्षा तो रखता है, लेकिन बड़े भाई का उत्तरदायित्व निभाने की वेला में अपना कर्तव्य याद ही नहीं आता। वर्तमान समय में हमारा भ्रातृ-प्रेम और पारिवारिक सौहार्द स्वार्थ की भेंट चढ चुका है। सामान्य परिवारों से भी अधिक सम्पन्न परिवारों में सिर फुटोव्वल हो रहा है। मल्लीनाथ जी की यह नजीर हम सब के लिये मार्गदर्शन का काम कर सकती है।

*

गतांक से आगे

साधना की प्रतिक्रियाएँ

– स्वामी यतीश्वरानन्द

आध्यात्मिक जीवन-एक बाधा दौड़ :

एक भारतीय कहावत है – ''श्रेयांसि बहुविघ्नानि'' (श्रेयमार्ग में बहुत बाधाएँ होती हैं।) यह बात आध्यात्मिक जीवन में और भी सत्य है। आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ने के तत्काल बाद साधक जिस अत्यन्त कष्टप्रद बातका अनुभव करता है, वह यह है कि उसका पथ बाधाओं और कठिनाईयों से भरा है तथा उस पर चलने का अर्थ है, काफी मात्रा में दु:ख भोगना। उसने सांसारिक जीवन से मुँह मोड़कर इस आशा से प्रार्थना और ध्यान के जीवन को स्वीकार किया था कि उसे परम शान्ति और पूर्णता प्राप्त होगी। उसने ध्यान के आनन्द तथा भगवद्दर्शन के आनन्द के बारे में पढ़ा था, जिसकी संसार के धर्मो के महान् सन्तों ने सम्भवत: उपलब्धि की थी। लेकिन जब वह उनकी तरह लम्बे समय तक ध्यान का अभ्यास करने का प्रयत्न करता है तो ऐसा करने में अपने को असमर्थ पाता है। पहले तो सब कुछ ठीक ठाक चलता रहता है। साधक को ध्यान और जप में आनन्द भी आता है। लेकिन इसके बाद प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं।

जो लोग दिन भर में केवल कुछ मिनटों के लिये ही ध्यान करते हैं, उन्हें इन प्रतिक्रियाओं के बारे में कुछ भी पता नहीं होता। लेकिन जो निष्ठावान् साधक लम्बे समय तक ध्यान, जप और प्रार्थना करते हैं उन्हें आन्तरिक और बाह्य बाधाओं का अवश्य सामना करना पड़ता है। ध्यान करना मन को मथने के समान है। जब हम अन्तर्मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करते हैं, तो हम अचेतन मन की गहराईयों को उद्वेलित कर देते हैं। ध्यान किए बिना हमें ''अचेतन'' मन के अस्तित्व का भान तक नहीं होता। जब हम उसका नियंत्रण करने का प्रयत्न करते हैं, तो वह विद्रोह कर उठता है और मन में विक्षेप पैदा करता है। ये आन्तरिक विक्षेप हमारे कर्मो तथा दूसरों के प्रति हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं, जो पुन: जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसकी प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित करते हैं। इन सभी आन्तरिक और बाह्य प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप साधक को शीघ्र यह ज्ञात हो जाता है कि ध्याननिष्ठ जीवन फूलों की सेज नहीं है। कई बार उसे महसूस होता है कि आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ने से पूर्व ही वह अधिक सुखी था। बहुत से लोग इतने हताश हो जाते हैं कि वे साधना बन्द कर देते हैं। कुछ उसे यंत्रवत्, कर्तव्य के बोध से करते रहते हैं। केवल कुछ विरले ही महान् लगन और उत्साह के साथ आगे बढ़ते रहते हैं।

अपने आध्यात्मिक जीवन का सचेतन रूप से निर्माण करना अत्यन्त कठिन कार्य है। अन्दर और बाहर तूफान उठते रहते हैं, और इन दोनों का सामना करने का सामर्थ्य होना चाहिए। तभी आध्यात्मिक जीवन का निर्माण सम्भव हो सकता है। साधना के दौरान तुम सभी को बहुत कठिन समय से गुजरना होगा और कुछ लोग राह के किनारे गिर जाएँगे और पीछे छोड़ दिए जाएँगे। यहाँ तक कि कुछ समय के लिये तुम्हारी कठिनाईयाँ बढ़ जाएँगी। तुम्हारे मित्रों और सम्बन्धियों की विपरीत प्रतिक्रियाओं के रूप में बाह्य बाधाओं की भी वृद्धि होगी।

कभी-कभी देह भी हर सम्भव प्रकार से विद्रोह करने लगती है। मन तनावपूर्ण और विद्रोही हो जाता है। स्नायु अतिसंवेदनशील हो जाते हैं। पुरानी वृत्तियाँ, पुरानी स्मृतियाँ और इच्छाएँ और अधिक बलवती होकर स्थूल-स्तर पर अभिव्यक्त होना चाहती है। यदि हम आध्यात्मिक जीवन यापन करना चाहते हैं, तो हमें इन सभी परीक्षाओं से, दीर्घकालीन कठिन अनिश्चितता से तथा जब तक उन पर विजय प्राप्त नहीं कर ली जाती, तब तक हमारी वासनाओं और इच्छाओं के साथ भयानक संघर्ष से गुजरना होगा। जीवन एक बाधा-दौड़ सा प्रतीत होता है। अनन्त बाधाओं को पार करना पड़ता है और लम्बे समय

तक हमें चैन नहीं मिलता। जो कोई साधनापथ का ईमानदारी और तीव्रता से अनुसरण करता है, उसे इन सभी बातों का अनुभव होगा।

प्रतिक्रियाओं का स्वरूप :

शंकराचार्य द्वारा रचित छोटे से ग्रन्थ ''अपरोक्षानुभूति'' में साधना के दौरान आने वाली बाधाओं की निम्न सूची दी गई है :

समाधि का अभ्यास करते समय कई बाधाएँ बलात् उपस्थित होती हैं : यथा अनुसंधान राहित्य, आलस्य, भोगलालसा, लय या निद्रा, तम, विक्षेप, रसास्वाद, शन्यूता इत्यादि। ब्रह्मविद् को धीरे-धीरे इन विघ्नों को त्यागना चाहिए।

पतञ्जलि अपने योगसूत्रों में ऐसी ही एक सूची प्रदान करते हैं :

व्याधि, स्त्यान या मानसिक जड़ता, संशय, प्रमाद, आलस्य, विषयभोग से अविरति, भ्रान्ति-दर्शन, एकाग्रता की अनुपलब्धि, स्थिति-विशेष में अवस्थित न हो पाना, ये चित्त के विक्षेप या बाधाएँ हैं।

जब हम इन बाधाओं की सूची का अवलोकन करते हैं, तो एक महत्त्वपूर्ण बात दिखाई देती है और वह यह कि ये सारी बाधाएँ हमारे द्वारा ही निर्मित हैं। ये हमारे भीतर ही पैदा होती हैं और इनके लिये किसी दूसरे को दोष देने से कोई लाभ नहीं है। ये साधना के विभिन्न कालों में पैदा होती हैं।

कभी ऐसा होता है कि वर्षों के दीर्घ आध्यात्मिक संघर्ष के बाद हमें कोई आध्यात्मिक अनुभूति होती है। वह प्राय: एक अस्थायी, आन्तरिक ज्योति की झलक मात्र होती है। उस समय बहुत से लोग सोचते हैं कि उन्हें ब्रह्मज्ञान हो गया है और अपने मन को और अधिक शुद्ध करने की अब आवश्यकता नहीं है। यह बहुत जल्दबाजी में लिया गया निर्णय है, जैसा कि उन्हें शीघ्र ही पता चल जाता है।

जब तक मन के कोनों और दरारों में जमी गर्द और मैल दूर नहीं की जाती, तब तक वस्तुत: हमारी समस्या सुलझ नहीं सकती। यदि दरवाजे के एक छेद से कुछ प्रकाश कमरे में आए, लेकिन सारा कमरा अन्धकारयुक्त और गन्दा पड़ा रहे, तो कोई लाभ नहीं होगा। यदि थोड़ा-सा प्रकाश मन में आये और उसमें पड़ी सारी गन्दगी और कचरा कुछ समय के लिये किसी सुदूर अन्धेरे कोने में भर दिया जाए, तो यह वास्तविक आध्यात्मिक ज्ञान नहीं कहला सकता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति इस तरह की ''झलक'' के पहले जैसा था, वैसा ही बना रहता है। कोरे सिद्धान्त और दार्शनिक मतवाद, चाहे वे कितने ही सुन्दर हों, हमें किसी तरह भी सहायता नहीं पहुँचा सकते। महत्त्वपूर्ण बात है, उन्हें व्यवहार में लाना, वासनाओं का उदात्तीकरण करना और मन के अंधकारमय कोनों में छुपी गन्दगी को दूर करना। चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध, हमारी तात्कालिक समस्या नहीं है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। सभी चित्तवृत्तियों को शान्त कर मन को खाली करने के प्रयत्न से प्रारम्भिक साधक को स्वत: प्रेरित निद्रा आ जाएगी; किसी प्रकार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। जो लोग सभी चित्तवृत्तियों को अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में ही निरुद्ध करने की बात करते हैं, वे नहीं जानते कि वे क्या कह रहे हैं।

प्रतिक्रियाओं के कारण :

आध्यात्मिक जीवन की अनेक बाधाएँ हमारे लापरवाह जीवन का परिणाम है। ऐसे लोग भी हैं, जो ध्यान का अभ्यास करते हैं और साथ ही अत्यधिक भोजन, अत्यधिक निद्रा, अत्यधिक अथवा अर्थहीन अव्यवस्थित कर्म, अत्यधिक और व्यर्थ की बकवास इत्यादि में लगे रहते हैं। अव्यवस्थित तथा गैर जिम्मेदारी से जिया गया जीवन आध्यात्मिक जीवन के साथ मेल नहीं खा सकता। जो लोग एक सुनियोजित जीवन-प्रणाली तथा नियमित शुद्ध आदतों का पालन नहीं कर सकते, उनके लिये आध्यात्मिक जीवन असम्भव है।

इन सबके अतिरिक्त साधना के दौरान होने वाली प्रतिक्रियाओं का सबसे सामान्य कारण अपर्याप्त मानसिक

पवित्रता है। ध्याननिष्ठ जीवन अंगीकार करने वाले अधिकांश लोग उसके नैतिक पक्ष को गहराई से नहीं लेते। वे ध्यान करने के लिये इतने व्यग्र रहते हैं कि वे नैतिक अनुशासन के अरुचिकर और कष्टसाध्य विस्तार को एक ओर छोड़ देने का प्रयत्न करते हैं। यह बात आज के युग में और भी सत्य है, जब लोगों को आध्यात्मिक जीवन के उच्चतर पक्ष विषयक पुस्तकें उपलब्ध हो गई हैं। ध्यान, आध्यात्मिक जागरण, कुण्डलिनी जागरण, दर्शन आदि बहुत आकर्षक और आसान प्रतीत होते हैं। लेकिन कठोर नैतिक जीवन यापन किये बिना उनकी उपलब्धि नहीं हो सकती। और यदि कोई बल प्रयोग से उच्चतर उपलब्धि प्राप्त भी कर लें, तो भी सारे पुराने संस्कार बड़े वेग से उठकर उसे नीचे खींच लेंगे और प्राय: महान् पतन का कारण होंगे।

मन इच्छाओं से पूर्ण है, जो उसे विभिन्न दिशाओं में खींचती हैं। अचेतन मन की गहराई से विभिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ निरंतर उठती रहती हैं और मन को चंचल करती रहती हैं। अधिकांश साधक इन विभिन्न व्यक्त या छुपी कठिनाईयों के बीच मन को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करते हैं। आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में, जब साधक में नया जोश रहता है, तब वह इन मानसिक विक्षेपों की भले ही उपेक्षा कर दे, लेकिन आगे या पीछे वे अपनी अवस्थिति का अनुभव कराते हैं। चूँकि तब तक प्रारम्भिक उत्साह कुछ हद तक कम हो गया होता है, इसलिए ये बाधाएँ और अधिक प्रबल और कठिन प्रतीत होती हैं।

कुछ साधक अपने आध्यात्मिक उत्साह में शुभ तथा उपयोगी प्रेरणाओं का भी प्राय: दमन कर देते हैं। वे मानवात्मा की प्रेम, करुणा और उच्चतर बौद्धिक आनन्द की स्वाभाविक और न्यायोचित माँगों को भी तिरस्कृत करने की दूसरी अति तक पहुँच जाते हैं। आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में बहुत से साधकों को बुरी भावनाओं का प्रतिकार करने के लिये शुभ भावनाओं की आवश्यकता होती है। अपनी निम्न वासनाओं का निराकरण करने के लिये उन्हें अध्ययन, भक्ति-संगीत, समाज-सेवा आदि की सहायता की आवश्यकता होती है। शुभ प्रवृत्तियों को अस्वीकार करने से वे और आसानी से अशुभ के शिकार हो जाते हैं। यह सत्य है कि अच्छी और उदात्त भावनाएँ भी उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति में बाधक है। लेकिन यह समस्या उन्नत साधक की है। एक प्रारम्भिक साधक के लिये, जो निम्न स्तर की अनुभूति का अर्थ भी नहीं जानता तथा जिसमें ऐसी प्रत्यक्ष अनुभूति से प्राप्त मानसिक बल नहीं है, स्वाध्याय, स्वधर्म-पालन, साधु-सेवा आदि कुछ समय के लिये आवश्यक है। सभी धर्मगुरु बुद्धिमानीपूर्वक साधक के लिये इनका आचरण करने का आग्रह करते हैं। अहंकारपूर्वक इन सभी प्रारम्भिक सहायता से दूर रहकर अपनी आन्तरिक शक्ति पर हमला करना खतरनाक है। जब तक तुम सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति के आनन्द का आस्वादन नहीं कर लेते, तब तक निम्न सुखों की पिपासा का किसी न किसी प्रकार से प्रतिकार करना होगा। प्रारम्भिक साधक के लिये यह कार्य केवल ध्यान से हमेशा नहीं हो सकता। अवश्य, अभूतपूर्व चित्तशुद्धि और ईश्वर के प्रति तीव्र व्याकुलतायुक्त साधकों की बात दूसरी है। किन्तु ऐसे लोग दुर्लभ हैं।

साधक के द्वारा बहुत अधिक करने का प्रयास साधना की प्रतिक्रियाओं का तीसरा कारण है। बहुत से साधक प्रारम्भ में लम्बे समय तक ध्यान नहीं कर सकते। उनमें दीर्घकालीन ध्यान के शारीरिक और मानसिक तनाव को सहन करने की स्नायविक शक्ति नहीं होती। कुछ दिग्भ्रमित लोग एक ही साथ बहुत सी बातें करने का प्रयत्न करते हैं तथा समस्या को और भी जटिल बना देते हैं। ध्यान के अतिरिक्त वे प्राय: बिना किसी उचित मार्गदर्शन के प्राणायाम तथा विभिन्न तपस्याओं में भी हाथ आजमाना चाहते हैं। शरीर को उचित आहार, विश्राम और निद्रा से वंचित करने से मन को नियन्त्रित करने के प्रयास में लम्बे समय तक एक आसन पर बैठने से तनाव में वृद्धि होगी। इसके परिणामस्वरूप मानसिक शक्ति की

क्षति अथवा स्नायविक आघात लग सकता है, जिससे जटिल समस्या पैदा हो सकती है। साधक को अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों के विषय में यथार्थवादी होना चाहिए। उत्तेजनीय और अतिसंवेदनशील लोगों को अचानक बहुत अधिक ध्यान का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उन्हें धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए। यह सत्य है कि तीव्र मुमुक्षा और महान् मनोबलयुक्त कुछ अल्पसंख्यक साधक भी हैं। लेकिन उनका अन्धानुकरण करने का प्रयत्न मत करो। अपने स्वभाव का अध्ययन करो और यह जानो कि तुम कितना बोझ उठा सकते हो। आसानी से उत्तेजित हो जाने वाले ऐसे लोगों को, जिनके दिमाग में बहुत-सी योजनाएँ उथल-पुथल मचाये रहती हैं, एक बार में एक घण्टे से अधिक समय तक बैठने और ध्यान करने के प्रलोभन से दूर रहना चाहिए। लम्बे समय तक ध्यान का अभ्यास करने के लिये शान्त व्यवस्था की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त अटूट ब्रह्मचर्य द्वारा मस्तिष्क को सबल बनाना चाहिए। ब्रह्मचर्यविहीन व्यक्तियों का मस्तिष्क आसानी से गरम हो जाता है।

जिन साधकों ने कुछ प्रगति कर ली है, उनमें दूसरे प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। शुष्कता अथवा शून्यता का भाव सबसे बहुल है। कुछ दिनों अथवा सप्ताहों तक अच्छे ध्यान का आस्वाद पाने के बाद साधक को लगता है कि उसने अचानक ध्यान में सारी रुचि खो दी है। वह मन को एकाग्र करने में कठिनाई का अनुभव करता है। उसे लगता है कि वह मानो शून्य में तैर रहा है। यह प्राय: अति स्पष्ट कल्पना की प्रतिक्रिया होती है। यदि तुम अपने इष्टदेवता की तीव्रता से कल्पना करने में सफल हो, उसका कुछ समय तक आनन्द ले सको तो जब तुम और अधिक कल्पना न कर सको तो तुम पूरी तरह किंकर्तव्यविमूढ हो जाओगे। तुम्हें लगता है कि तुम्हारा इष्ट की सत्ता के साथ सम्पर्क-विच्छेद हो गया है और इससे बहुत वेदना होती है। ऐसी स्थिति में यह स्मरण रखना सदा श्रेयस्कर है कि अन्तरात्मा सदा आत्माओं की आत्मा-परमात्मा के सम्पर्क में बनी रहती है। भले ही तुम कल्पना करने में असफल हो रहे हो, फिर भी तुमने वास्तव में कुछ भी नहीं खोया है। इन शुष्क अवसरों पर, चाहे वे कितने ही कष्टप्रद क्यों न हो, साधक को अपनी चेतना के केन्द्र को पकड़े रखकर जप करते रहना चाहिए।

साधना की प्रतिक्रियाओं का एक और कारण है, व्यक्ति की चेतना के केन्द्र का बदलना। आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ने के पूर्व साधारण मानव की चेतना निम्न केन्द्रों में विचरती रहती है। उसका सामान्य जीवन खाने, सोने और इन्द्रिय-भोगों से ही सम्बन्धित रहता है। आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ने पर उसे पता चलता है कि निम्न विचारों और गतिविधियों के द्वारा वह स्वयं को परिचालित नहीं होने दे सकता। उसे उच्चतर विचारों की आवश्यकता महसूस होती है और इसका अर्थ है, चेतना के केन्द्र का परिवर्तन। जब चेतना के केन्द्र को हृदय या मस्तक के स्तर तक लाने का प्रयत्न किया जाता है, तो तुम्हें पता चलता है कि तुम इन स्तरों पर अधिक समय तक बने नहीं रह सकते। तब तुम्हें अनुभव हो जाता है कि तुम्हारी चेतना का कोई निश्चित केन्द्र नहीं है। इससे मन अत्यधिक अस्थिर हो जाता है।

किसी संदर्भ-बिन्दु के बिना संसार में रहना और उसके विषयों के साथ व्यवहार करना अत्यन्त विरक्तिकर अनुभव है। साधक पाता है कि वह न तो चेतना के उच्च केन्द्र में इष्ट का ध्यान कर सकता है न ही निम्न केन्द्रों में विचरण करता हुआ पहले की तरह संसार का सुख भोग सकता है। जब अहं चेतना बिना किसी निश्चित बिन्दु के भटकती रहती है, तब साधक अपने बारे में कम विश्वस्त हो जाता है तथा उसका चरित्र और आचरण कुछ समय के लिये अस्थिर हो जाता है। आध्यात्मिक विकास के क्रम में यह एक अपरिहार्य अवस्था है। इस अवस्था से व्यक्ति कितनी जल्दी उबरता है, यही प्रश्न है। कुछ साधक बहुत लम्बे समय तक उत्कृष्ट और उपहास्य स्थिति के मध्य दोलायमान होते हुए बने रहते हैं। दूसरे कुछ स्थायी रूप से अपनी चेतना को निम्न केन्द्रों में बनाए रखकर पुराने जीवन को लौट जाते हैं। *(क्रमश:)*

गलत उपदेशों का गलत परिणाम

– स्वामी सच्चिदानन्द

(संघशक्ति में प्रकाशित सौराष्ट्र की शौर्य कथाओं के लेखक गुजरात के दन्ताली आश्रम, जिला-आणन्द के स्वामी सच्चिदानन्द जी का संक्षिप्त परिचय देते समय लिखा था कि आप धार्मिक कम और अधिक सामाजिक संत हैं।

यहाँ उनके क्रान्तिकारक विचारों का हिन्दी अनुवाद देने का ध्येय यह है कि हमारी रूढिगत मान्यताएँ, जिन्होंने हमारी संस्कृति व मानवता को अकल्प्य हानि पहुँचाई है, उनको तोड़-फोड़ के फेंक देने का साहस थोड़े लोगों में जागे। – *अनुवादक*)

अर्पण

जिन्होंने साहस करके गलत उपदेशों से प्रजा को बचाने के लिये कलम, वाणी व आचार द्वारा सतत् पुरुषार्थ किया है, उन सभी श्रद्धावन्त सुधारकों को सादर अर्पण-*सच्चिदानंद*

भारत में जितनी धार्मिकता दिखती है, उतनी विश्व में और किसी भी देश में नहीं दिखेगी। जितनी साप्ताहिक कथाएँ यहाँ होती हैं, उतनी और कहाँ होती हैं? जितने यज्ञ, शिविर, यात्राएँ, प्रवचन आदि यहाँ होते हैं, उतने विश्व में कहीं भी नहीं होते। भारत का रक्षा बजट बनता है, उससे भी अधिक भारत में धार्मिक आयोजनों में धन का व्यय होता है। फिर भी प्रजा का गठन, निर्माण, जितना होना चाहिए उतना नहीं होता। मेरी दृष्टि से व्यास पीठ पर बैठने वाले उपदेशकों में कम से कम पाँच गुण तो होने ही चाहिए। समयबद्धता, वचनबद्धता, व्रतबद्धता, मनी मोरल (*Money Moral*) और सेक्स मोरल (*Sex Moral*)। ये पाँच गुण हों, तभी व्यक्ति व्यासपीठ पर बैठने का अधिकारी हो सकता है।

ज्यादातर ऐसा होता है कि वक्ता जानबूझकर निर्धारित समय से आधा या एक घण्टा देर से आता है। ऐसा करने में वह गौरव मानता है। उसको देरी से आने से ग्लानि नहीं होती। देर से आने की क्षमा भी वह माँगता नहीं। श्रोतागण भी ऐसे समय-अपराध को अपराध नहीं मानता। वह भी देर से आने वाले को महान मानता है। दोनों पक्ष ही समयबद्धता में अनगढ़ हैं।

बोले हुए का पालन करना वचनबद्धता है। वचन पालन के लिये ही तो श्रीराम चौदह वर्ष तक वन में भटकते रहे और अमर हो गए। असाधारण कारण के बिना वचन भंग कभी भी करना नहीं चाहिए।

जीवन एक व्रत है, जो कर्तव्य व्रत रूप से मिला है, उसका पालन करना व्रतबद्धता है। गृहस्थव्रत है। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पुत्रवधू, परिवार आदि सबके अपने-अपने व्रत होते हैं। उसका पालन करना ही व्रतबद्धता है। चपरासी, थानेदार, एस.पी. आदि सभी के कर्तव्य उनका व्रत है। वो ही सच्चा व्रत है। ऐसा ही पत्नीव्रत है। उसका पालन करेगी तो वह पतिव्रता है। बेड़ा पार लग जाएगा। ऐसे सहज प्राप्त व्रतों से बंधना भी कल्याणकारी हो सकता है। उसी तरह व्यासपीठ पर बैठने से पहले प्रतिज्ञा करता है-

सत्यं वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि।

आदि-आदि। इन व्रतों के स्थान पर वक्ता लोभ, लालच, भय या अन्य किसी कारण से व्रत भंग करता है तो वह व्यासपीठ का अपराधी माना जाएगा।

इसी तरह व्यासपीठ या धर्मपीठ पर बैठने वाले का मनी मोरल होना चाहिए। लोभी, लालची, धन्धाधारी, केवल पैसे के लिये वाणी का व्यापार करने वाला व्यासपीठ का अधिकारी नहीं हो सकता।

पांचवां गुण है सेक्स मोरल। सेक्स मोरल का मतलब है काम वासना के क्षेत्र में संयमित जीवन जीने वाला। पत्नी को साथ में रखने से दोनों की रक्षा होती है। पत्नी को घर पर छोड़कर वाणी का प्रसाद बांटने को निकले तो शायद दोनों की रक्षा न भी हो। यह कार्य ही ऐसा है कि जहाँ कई स्त्रियों के सम्पर्क में आना होता है। कुछ स्त्रियाँ पवित्र नहीं होती। कुछ एक मुग्धा स्त्रियाँ वक्ता पर मुग्ध हो जाती हैं, तो कई बहुभोगी स्त्रियाँ सामने चलकर भेंट पड़ती हैं। इन सभी से बचना बहुत कठिन काम है। कथाकार, कलाकार, संगीतकार, साहित्यकार आदि सभी कला किए हुए मयूर जैसे हो

जाते हैं। सामने से देखें तो बहुत सुन्दर दिखेगा मगर पीछे से देखा जाय तो नग्न ही दिखेगा। यह क्षेत्र ही ऐसा है कि जो बचा वह धन्य-धन्य हो गया। जिसको बचना है वह शृंगार न करे। या तो पंचकेश रखे या मुण्डन करा ले। मेकअप न करे। बाल काले न करे। नखरे, अदाएँ न करे। इन बातों का ध्यान न रखकर व्यासपीठ पर बैठने वाले की मानसिकता पवित्र नहीं होगी। वह स्वयं शिकार ढूंढ़ता रहता है। जैसे को तैसा मिल भी जाता है। इससे अनिष्ट सृजित होते हैं। सेक्स मोरल रखने से व्यक्ति पवित्र होता है। उसका जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा उत्तम वक्ता होते हुए भी जो इन दोनों मोरल से मुक्त है, श्रोताओं को प्रभावित नहीं कर सकता। कम से कम भारत के लिये तो वह वास्तविकता है।

व्यासपीठ गठन का कार्य करती है, यदि उस पर गठित, स्व निर्मित व्यक्ति बैठा हो। चाहे वक्ता साधारण हो, पर गठित हो। अनगढ वक्ताओं से हजारों व्यासपीठ सक्रिय हों, फिर भी प्रजा का गठन नहीं होगा। क्या आज ऐसा नहीं हो रहा है? हमारे यहाँ वक्ताओं और व्यासपीठों की कमी नहीं है, पर उपरोक्त पाँच तत्वों वाले वक्ता कितने हैं।

एक छठा गुण है वैचारिकता का। वक्ता स्वयं चिंतक होना चाहिए। उसका अपना स्वतंत्र, मौलिक चिंतन होना चाहिए। जो वक्ता रूढिवादी है, वह प्राचीन-काल से बंधा हुआ रहता है। वह वर्तमान को नहीं समझ सकता। भविष्य तो वह देख भी नहीं सकता। वह बार-बार शिकायत करता है कि पहले ऐसा था, ऐसा नहीं था। अब सब बिगड़ गया है। वक्ता नास्तिक भी नहीं होना चाहिए। नास्तिकता बिना परिणाम की होती है। वक्ता आस्तिक व श्रद्धावान होना चाहिए। व्यासपीठ का वक्ता निर्माण करता है, यह सदैव ध्यान में रहे। हालांकि अब ऐसे गठन का काम टी.वी. चैनलों ने ले लिया है। टी.वी. चैनल बहुत अच्छा कार्य कर सकती हैं, पर कई बार वे तबाही मचाती हैं। विशेष कर डिबेट का रूप बहुत निम्न स्तर का और हानिकारक बन गया है। अनावश्यक प्रश्नों की खूब चर्चा करते हैं और लोगों को उकसाते हैं।

बार-बार कहा जाता है कि हमारी यज्ञ की संस्कृति है। ऋषि-मुनि यज्ञ करते थे। ऐसा कहकर हजार-हजार कुण्डीय यज्ञ बार-बार होते रहते हैं। इससे प्रश्न सुलझते नहीं हैं। हमने अग्नि में भगवान के नाम से जितना जलाया है, उतना विश्व में कहीं भी जला नहीं है। फिर भी विश्व की तुलना में हम गरीब हैं। गलत मार्ग पर दौड़ पड़ने का यह परिणाम है।

पदयात्रा करने वालों के संघ बहुत बढ गए हैं। रास्ते में चलने की जगह ही नहीं बचती। वाहन दुर्घटनाओं के शिकार बनते हैं। पदयात्री रास्ते के एक किनारे अनुशासित होकर नहीं चलते। बीचोंबीच समूह में चलते हैं। तीर्थ क्षेत्रों में भी अमाप गदंगी होती है। भण्डारों में खाने वाले भीड़ करते हैं। कभी-कभी ऐसी भीड़ में लोग कुचले भी जाते हैं। कोई इसके विरुद्ध कुछ भी बोल नहीं सकता। श्रद्धा का विषय है न? ऐसे दृश्य विश्व में और कहीं शायद ही देखने को मिले। इन सभी से राष्ट्र को क्या मिलता है? मानवता के कष्ट के सिवाय कुछ भी नहीं मिलता। मगर ऐसा बढता ही जा रहा है।

अच्छे, ज्ञानी लोगों को मिलकर पूरी धार्मिकता के बारे में नये सिरे से विचार, चिंतन करना चाहिए। मगर कौन कहे-'आ बैल मुझे मार'? हाँ में हाँ भरते रहो। अपना मतलब इतना ही कि केवल जेब ही नहीं बैंक-बैलेंस भरते जाओ। बढाते जाओ। राजनेतागण भी बहती गंगा में हाथ धोने के लिये तत्पर रहते हैं। भीड़ में पहुँच जाते हैं।

ऐसी स्थिति में मेरा यह लिखना कुछ परिणाम लाएगा, ऐसी आशा कम है। फिर भी प्रयत्न कर रहा हूँ। कइयों को यह जचेगा नहीं। मेरे आलोचक बढेंगे ही। फिर भी जो सत्य लगता है, साहस करके लिखने का प्रयत्न किया है। हिन्दू धर्म में बहुत बड़ी जमी हुई बात यह है कि वह कट्टरवादी कभी नहीं बना है। अपनी आलोचनाओं को भी वह सहन कर लेता है। मुझे आशा है कि मेरी आलोचनाओं को भी सह लेगा। यह पुस्तक लिखते हुए मैं परमेश्वर का बहुत आभारी हूँ। उनकी कृपा से यह लिखा जा सका है। आज नहीं तो बरसों के बाद इन विचारों को लोग मान्य करेंगे, ऐसी मुझे श्रद्धा है।

मेरा विशाल पाठकगण तैयार हुआ है। वे सब मुझे ऐसा लिखने के लिये प्रोत्साहित करते रहते हैं। उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। परम कृपालु परमेश्वर को वन्दन करके विराम देता हूँ।

सद् बन्धन ही जीवन

– महिपालसिंह चूली

आज के इस युग में चारों ओर आजादी, स्वतंत्रता व स्वच्छंदता का प्रचार-प्रसार सुनने व देखने को मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बालिका, युवा हो या वृद्ध, हर कोई चाहता है कि मैं स्वतंत्र जीवन यापन करूँ। कभी-कभी तो यह भी सुनने को मिलता है कि यह मेरी 'निजी जिन्दगी है' इसमें किसी अन्य को बोलने की कोई आवश्यकता नहीं। इस तथाकथित निजी जिन्दगी की हवा में वह सभी प्रकार की सामाजिक मर्यादाओं की धज्जियाँ उड़ाता है। देखा जाए तो मनुष्य की निजी जिन्दगी भी मर्यादाओं से सीमित ही हो सकती है, स्वच्छन्द उड़ानों के लिये नहीं। परमेश्वर ने तो मनुष्य नामक प्राणी की सृष्टि ही इसलिए की है कि इस प्रकृति रूपी माँ की गोद में समूह रूप में आनन्द व प्रसन्नता के साथ खेलता-कूदता उस परमपिता परमेश्वर की गोद में प्रविष्ट होने का मार्ग अपनाए।

आज की भौतिकता भरी मानसिकता में स्वतंत्रता और स्वच्छंदता का मार्ग अपनाकर मनुष्य निपट स्वार्थी ईर्ष्यालु, अहंकारी बनता जा रहा है। अपनी ऐसी मानसिकता से वह स्वयं तो दुख पाल ही रहा है, अन्यों के लिये भी कष्टों व दुखों के कांटे बो रहा है। वह पारिवारिक व सामाजिक मान्यताओं व मर्यादाओं को स्वीकार करना अपनी प्रतिष्ठा में कमी होना मानने लगता है। वह मानता है कि ये मर्यादाएँ तो बेड़ियाँ हैं जो मेरे स्वतंत्र विकास की बाधक हैं। मुझे ऐसी मर्यादाएँ नहीं चाहिए, मुझे तो स्वतंत्र जीवन यापन करना है, इसी सोच में अपने जीवन को ढालता है। हर व्यक्ति अपना जीवन स्वयं ही जीता है, इस दृष्टिकोण से वह स्वतंत्र ही है। पर वह जीवन परिवार, समाज और राष्ट्र के हितों की सीमा में रहता है तो मर्यादित होकर जीवन गुणों से सम्पन्न बन जाता है, पर इन हितों की मर्यादा भंग हुई तो जीवन व्यक्तिगत स्वार्थ और अहंकार की अराजकता से लिप्त होकर मनुष्यत्व की सार्थकता खो बैठता है।

मेरा अधिकांश समय आज की युवा पीढ़ी के साथ व्यतीत होता है। तथाकथित स्वतंत्रता की शिकार इस पीढ़ी को देखकर भविष्य अंधकारमय लगता है। इस पीढ़ी में विशिष्ट गुणों के दर्शन की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती, निरंतर प्रयास भी उनको अनुशासन में बाँधने में असफल रहते हैं। तब लगता है हमारे पारिवारिक व सामाजिक आदर्श जीवन का क्या होगा? क्या होगा राम की उस पिता की अज्ञापालन का? क्या होगा भरत के भ्राता स्नेह का? क्या होगा सीता के वनवास-कष्ट सहने का? क्या होगा हनुमान की सेवा भावना का? क्या होगा दुर्गादास की स्वामीभक्ति का? क्या होगा महाराणा प्रताप के स्वाभिमान का? क्या होगा दुर्गादास की स्वामीभक्ति का? क्या होगा हमारे सामाजिक भाव का? ऐसी मानसिकता में हमारे अपनत्व की फुलवारी कैसे पनप पाएगी?

यह सब देखकर यह सोचने को मजबूर होना पड़ता है कि इस स्वच्छंदता के किटाणुओं ने कितनी हानि कर डाली है। लेकिन क्या हमारी यह पीढी उसे हानिकारक मानती है? नहीं, वे तो आजाद ही रहना चाहते हैं। उनका सोचना है कि हम जो कर रहे हैं, वह सही है। इसमें जो बाधक है, वह गलत है। उनको यह महसूस ही नहीं होता कि यह स्वच्छंदता हमारे पतन का मार्ग है। भौतिक-सुख-भोगी देशों को देखकर उनकी नकल करने में ही जीवन की सार्थकता मान बैठे हैं वे। भौतिकता की दौड़ में मानवता कुचली जा रही है, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं है।

आवश्यकता स्वच्छदंता की नहीं, आवश्यकता सद्बंधनों से बंधने की है। पारिवारिक मर्यादाओं के बंधन को अपनाएंगे तो परिवार में खुशियाँ पनपेगी। सामाजिक मर्यादाओं को निभायेंगे तो सामाजिक जीवन में निखार आएगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ तो कहता है कि अपने कर्तव्य से, अपने उत्तरदायित्व से अपने आपको बांध लो, इसी में सारी मर्यादाएँ समाहित हैं और यही जीवन की सार्थकता है।

कैद होना चाहते हैं, मुक्ति का हम क्या करें।
राह मिल गई, साथ हो गए, और सुख का क्या करें।

विचार-सरिता

(एक चत्वारिंशत् लहरी)

– *विचारक*

भारत भूमि महान है। यहाँ की संस्कृति मनुष्य को अध्यात्म की ओर अग्रसर करती है। वह शनै: शनै: उसे मनुज से देवत्व व देवत्व से परमात्मा की ओर उन्मुख करती है। सही मायने में देखा जाय तो यहाँ की संस्कृति व्यष्टि से समष्टि व समष्टि से परमेष्टि तक की यात्रा कराने की विधा है। प्रभात में उठते ही हम श्रद्धापूर्वक अपने हाथों के दर्शन करते हैं और विश्वासपूर्वक कल्पना करते हैं कि हमारे हाथों के अग्रभाग में लक्ष्मी जी विराजमान हैं और मध्यभाग में विद्या की देवी सरस्वती माता का निवास है तथा हाथों के मूल में सर्वशक्तिमान परमात्मा हरि विराजित हैं। इसीलिए तो हमारी संस्कृति कहती है कि जगते ही सर्वप्रथम हाथों का दर्शन करते हुए इस श्लोक का उच्चारण करें।

कराग्रे वस्ते लक्ष्मी, कर मध्य सरस्वती।
कर मूलेतू गोविन्दम्, प्रभाते कर दर्शनम।।

भारतीय संस्कृति में दिन की शुरुआत ही भगवत स्तुति से होती है। उसके बाद पलंग से उतरने से पूर्व धरती माता को प्रणाम करते हुए क्षमायाचना करने का विधान है कि हे माते! मैं अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करने के लिये अपने चरणों को आप पर टिका रहा हूँ मुझे क्षमा करना।

इसके बाद इस देह के कारणस्वरूप माता-पिता को प्रणाम करते हैं और उनसे तथा बड़े-बुजुर्गों से दीर्घायु होने का आशीर्वाद पाते हैं। शौचनिवृति व स्नान द्वारा भीतर बाहर की शुद्धि के उपरान्त देवालय या पूजाघर में बैठकर नित्यस्तुति द्वारा भगवान की उपासना करते हैं और भगवान से करुणामय भाव से यह प्रार्थना करते हैं कि ''हे नाथ! आप मेरे हैं और मैं आपका हूँ। आपके सिवाय इस जगत में मेरा कोई नहीं।'' ***त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या दृविड़ंत्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।***

हमारी संस्कृति कहती है कि दैनिक जीवन के समस्त कार्यकलापों में ईमानदारी पूर्वक ''जन हिताय, जन सुखाय'' का भाव रखें। ***सर्वे भवन्तु सुखीन:, सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:ख भागभवेद्।।*** वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से कर्तृत्व अभिमान से रहित होकर सेवक की भाँति व्यापार, नौकरी, खेती, कुटुम्बपालन आदि जो भी है वह करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करें। सद्विचारों से ओतप्रोत होकर सद्कार्य करने की आज्ञा देते हुए वेद कहते हैं-***तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृध: कस्य स्विद्धनम्!*** चराचर रूप भासित जो भी पदार्थ दिख रहा है वह सब परमात्मा का है। उसका त्याग भाव से सदुपयोग करना सीखें। समस्त पदार्थ परमेश्वर के होने से उन पर गिद्ध दृष्टि न रखें।

मानव-शरीर अन्य समस्त शरीरों से श्रेष्ठ और परम दुर्लभ है। यह परमात्मा की तरफ से दिया गया विशेष तोहफा है। इसके रहते-रहते हमें वह पाना है जिसे पाने के बाद और कुछ पाने की इच्छा ही समाप्त हो जाय। यह मनुष्य का अन्तिम चोला है अत: इसे पाने के बाद जन्म और मृत्यु की संसृति समाप्त हो जानी चाहिये। देव-दुर्लभ इस मनुज देह को पाकर भी जो मनुष्य अपने कर्म समूह को ईश्वर-आराधना के लिये समर्पित नहीं करते और कामोपभोग को ही जीवन का परम ध्येय मानकर विषयों की आसक्ति और कामनावश जिस किसी प्रकार से भी केवल विषयों की प्राप्ति और उनके यथेच्छ उपभोग में ही लगे रहते हैं; वे वस्तुत: मनुष्य कहलाने के लायक ही नहीं हैं। वे तो अपने ही कर्मों से अपनी हत्या कर रहे हैं। ऐसा अमूल्य जीवन पाकर भी जो अपना पतन करने वाले हैं वे मनुष्य की आकृति में पशु ही हैं।

इन काम-भोग-परायण लोगों को-चाहे वे कोई भी क्यों न हों, उन्हें चाहे कितना ही पद, प्रतिष्ठा, वैभव, नाम, यश या अधिकार प्राप्त हो परन्तु मरने के बाद कर्मों के फलस्वरूप बार-बार उन्हें कूकर-शूकर, कीट-पतंग, तिर्यकयोनियाँ व विभिन्न शोक-संतापपूर्ण आसुरी योनियों में या भयानक नरकों में भटकना पड़ता है। इसीलिए गीता के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य वही है जो अपने द्वारा अपना उद्धार करे, पतन की ओर कभी भी अग्रसर न हो।

साधक को चाहिये कि वह जो भी ईश्वरीय प्रेरणा से भगवदीय कार्य करे उसमें पूर्णतया अपने को खपा देवे। उसकी उपस्थिति केवल उस सद्कार्य में ही हो। मन, वचन, कर्म से वह सदैव वहाँ उपस्थित रहे। विचारवानों ने साधकों के लिये तीन सूत्र दिए हैं जिनका ठीक-ठीक पालन करना ही मानवता है।

1. वर्तमान में जीना सीखें :- काल के तीन खण्ड नासमझी में हैं। केवल वर्तमान ही काल है। जब भी काल उपस्थित होता है वह वर्तमान बनकर ही उपस्थित होता है। कहा जाने वाला भूत व भविष्य काल तो किसी के हाथ लगा ही नहीं। जो काल हाथ लगा वह केवल और केवल वर्तमान ही हाथ लगता है। जिसे हम भूतकाल कहते हैं वह काल नहीं हो सकता वह तो अतीत की स्मृति मात्र है, उसे काल कैसे कहा जाय। वर्तमान में उसका कोई अस्तित्व नहीं। वह पुन: कभी वर्तमान बन नहीं सकता। जो हमारे हाथ नहीं लगे वह काल कैसे हो सकता है। अत: उसे काल कहना ही नासमझी है। जिसे हम भविष्यकाल कहते हैं वह अज्ञानजन्य है। वह आज तक किसी ने देखा नहीं और मजे की बात तो यह है कि आवश्यक नहीं कि वह वर्तमान बनकर हमारे हाथ लगे। किन्तु जब भी हाथ लगेगा तो वर्तमान बनकर ही हाथ लगेगा।

अत: वर्तमान में जीना सीखें। भूत और भविष्य की कल्पना से रहित होकर व्यवहारिक जगत में जो सद्कार्य करें उसमें पूर्ण निष्ठा से अपने आपको झोंक दो। ऐसा न हो कि ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तो अपना काम करे लेकिन मन और कहीं चला जाय। ऐसा प्रमादभरा जीवन साधक का जीवन नहीं कहा जा सकता। उस कार्य के अनुरूप होकर जीएँ। अतीत व भविष्य के पंखों को काट फैंके और केवल वर्तमान में जीना सीखें।

2. सृजनात्मक कार्य करें :- सृजनात्मक कार्य का अभिप्राय यह कि हम कुछ नया करें। ऐसा कृत्य जो लोगों के लिये नवीन व प्रेरणास्पद हो। अपनी प्रतिभा को निखार देवें। चाहे वह खेल ही क्यों न हो। चित्रकारी, गायन, नृत्य, भवन-निर्माणकला आदि जो भी हमारे स्वभाव में समाया हुआ है उसे प्रस्तुति देवें जिससे आपके जीवन में खुशहाली व आनंद का स्रोत फूट पड़े। जिससे लोगों का हित हो और जिसे देखकर तथा अपनाकर लोग हर्षित हो जाएँ। केवल दूसरे ही हर्षित न हों, आप स्वयं भी उस सृजनात्मक कार्य से आनन्द से भर जाएँ। जीवन का एक ही तो सच है कि व्यक्ति आनंद में डूबना चाहता है। कबीर, रैदास, मीरा और चैतन्य महाप्रभू आदि असंख्य ऐसे महापुरुष हुए जो अपने भीतर की प्रतिभा को उजागर करते हुए आनंद के सागर में समा गए।

3. भीतर में उतरना :- आनंद का दरिया भीतर है। बाहर जो सुखानुभूति हो रही है वह इन्द्रियों का रस है। पदार्थों का संचय हमें सुखी तो कर सकता है परन्तु आनन्दित नहीं कर सकता। सुख इन्द्रियजन्य है और आनन्द इन्द्रियातीत है। अत: जब भी एकान्त मिले, अवसर निकालकर भीतर की यात्रा करनी सीखें। नियमित रूप से समय निकालकर, जहाँ शोरगुल का अभाव और नितान्त एकाकीपन हो, सुखासन में बैठकर सजगतापूर्वक नेत्र बन्द कर लें। ज्ञानेन्द्रियों में सबसे ज्यादा भटकानेवाली ज्ञानेन्द्रि चक्षु ही है अत: नेत्र के द्वार बन्द कर लें और धीरे-धीरे भीतर में उतरना प्रारम्भ करें। अब जैसे रूप के विषय का अभाव हुआ ऐसे ही शब्द विषय का भी अभाव हो जाएगा। इसी तरह रस, घ्राण और स्पर्श विषय भी शान्त होने लगेंगे। ध्यान रहे वहाँ आलस्य और निद्रा को नजदीक मत आने देना। साक्षी बनकर उस भीतर की दुनिया को निहारते रहना। उभरने वाले दृश्यों का विरोध भी नहीं करना है तथा सहयोग भी नहीं करना है। बस केवल उदासीन भाव से साक्षीवत् देखते रहना है। कुछ दिनों के नित्य अभ्यास से धीरे-धीरे भीतर की सारी कल्पनाओं का सागर सूख जाएगा और आप एक अतीन्द्रिय आनंद से भर जाओगे। एक स्थिति ऐसी भी आएगी कि आप अब उस आनंद के बिना जी ही नहीं सकोगे। चाहकर भी आप उस आनंद को छोड़ नहीं सकोगे। एक इस प्रकार के आनंद के घेरे से आप घिर जाएंगे कि आप जहाँ भी जाएंगे, जिस किसी परिस्थिति में होंगे, आप आनंद से घनीभूत रहेंगे।

यही वास्तविक जीवन है तथा यही मनुष्यता है। जब तक हम हमारे स्वरूपानंद में नहीं डूबेंगे तब तक जीवन में बसन्त नहीं आ सकता। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए साधक को अपना जीवनयापन करना चाहिए।

ॐ तत् सत्! ॐ तत् सत्!! ॐ तत् सत्!!!

संयम सदाचार का बल

– मारकण्डेय पुराण से

वरुणा नदी के तट पर अरुणास्पद नाम के नगर में एक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा सदाचारी तथा अतिथि-वत्सल था। रमणीय वनों एवं उद्यानों को देखने की उसकी बड़ी इच्छा थी। एक दिन उसके घर पर एक ऐसा अतिथि आया, जो मणि-मन्त्रादि विद्याओं का ज्ञाता था। जिनके प्रभाव से प्रतिदिन हजारों योजन चल जाता था। ब्राह्मण ने उस सिद्ध-अतिथि का बड़ा सत्कार किया। बातचीत के प्रसङ्ग में सिद्ध ने अनेकों वन, पर्वत, नगर, राष्ट्र, नद, नदियों एवं तीर्थों की चर्चा चलायी। यह सुनकर ब्राह्मण को बड़ा विस्मय हुआ। उसने कहा कि इस पृथ्वी को देखने की मेरी भी बड़ी इच्छा है। यह सुनकर उदारचित आगन्तुक सिद्ध ने उसे पैर में लगाने के लिये एक लेप दिया, जिसे लगाकर ब्राह्मण हिमालय पर्वत को देखने चला। उसने सोचा था कि सिद्ध के कथनानुसार मैं आधे दिन में एक हजार योजन चला जाऊँगा तथा शेष आधे दिन में पुनः लौट आऊँगा।

अस्तु, वह हिमालय के शिखर पर पहुँच गया और वहाँ की पर्वतीय भूमि पर पैदल ही विचरना शुरू किया। बर्फ पर चलने के कारण उसके पैरों में लगा हुआ दिव्य लेप घुल गया। इससे उसकी तीव्र गति कुण्ठित हो गयी। अब वह इधर-उधर घूमकर हिमालय के मनोहर शिखरों का अवलोकन करने लगा। वह स्थान सिद्ध, गन्धर्व, किन्नरों का आवास था। उनके विहारस्थल होने से उसकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। वहाँ के मनोहर शिखरों के देखने से उसके शरीर में आनन्द से रोमांच हो आया।

कुछ देर बाद जब उसका विचार घर लौटने का हुआ तो उसे पता चला कि उसके पैरों की गति कुण्ठित हो चुकी है। वह सोचने लगा-'अहो! यहाँ बर्फ के पानी से मेरे पैर का लेप धुल गया। इधर यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मैं अपने घर से हजारों योजन की दूरी पर हूँ। अब तो घर न पहुँचने के कारण मेरे अग्निहोत्रादि नित्य कर्मों का लोप होना चाहता है। यह तो मेरे ऊपर भयानक संकट आ पहुँचा। इस अवस्था में किसी तपस्वी या सिद्ध महात्मा का दर्शन हो जाता तो वे कदाचित् मेरे घर पहुँचने का कोई उपाय बतला देते।' इसी समय उसके सामने वरूथिनी नाम की अप्सरा आयी। वह उसके रूप से आकृष्ट हो गयी थी। उसे सामने देखकर ब्राह्मण ने पूछा-'देवी! मैं ब्राह्मण हूँ और अरुणास्पद नगर से यहाँ आया हूँ। मेरे पैर में दिव्य लेप लगा हुआ था, उसके धुल जाने से मेरी दूरगमन की शक्ति नष्ट हो गयी है और अब मेरे नित्य कर्मों का लोप होना चाहता है। कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे सूर्यास्त के पूर्व ही अपने घर पर पहुँच जाऊँ।'

वरूथिनी बोली-'महाभाग! यह तो अत्यन्त रमणीय स्थान है। स्वर्ग भी यहाँ से अधिक रमणीय नहीं है। इसलिये हम लोग स्वर्ग को भी छोड़कर यहीं रहते हैं। आपने मेरे मन को हर लिया है। मैं आपको देखकर काम के वशीभूत हो गयी हूँ। मैं आपको सुन्दर वस्त्र, हार, आभूषण, भोजन, अङ्गरागादि दूँगी। आप यहीं रहिये। यहाँ रहने से कभी बुढ़ापा नहीं आयेगा। यह यौवन को पुष्ट करने वाली देवभूमि है।' यों कहते-कहते वह बावली-सी हो गयी और 'मुझ पर कृपा कीजिये, कृपा कीजिये'-कहती हुई उसका आलिङ्गन करने लगी।

तब ब्राह्मण बोला-'अरी ओ दुष्टे! मेरे शरीर को न छू। जो तेरे ही ऐसा हो, वैसे ही किसी अन्य पुरुष के पास चली जा। मैं कुछ और भाव से प्रार्थना करता हूँ और तू कुछ और ही भाव से पास आती है? मूर्खे! यह सारा संसार धर्म में प्रतिष्ठित है। सायं-प्रातः का अग्निहोत्र, विधिपूर्वक की गयी इज्या ही विश्व को धारण करने में समर्थ है और मेरे उस नित्य कर्म का ही यहाँ लोप होना चाहता है। तू तो मुझे कोई ऐसा सरल उपाय बता, जिससे मैं शीघ्र अपने घर पहुँच जाऊँ।' इस पर वरूथिनी और गिड़गिड़ाने लगी। उसने कहा-'ब्राह्मण! जो आठ आत्मगुण बतलाये गये हैं, उनमें दया ही प्रधान है।

आश्चर्य है, तुम धर्मपालक बनकर भी उसकी अवहेलना कैसे कर रहे हो! कुलनन्दन! मेरी तो तुम पर कुछ ऐसी प्रीति उत्पन्न हो गयी है कि सच मानो, अब तुमसे अलग होकर जी न सकूँगी। अब तुम कृपा कर मुझ पर प्रसन्न हो जाओ।'

ब्राह्मण ने कहा-'यदि सचमुच तुम्हारी मुझ में प्रीति हो तो मुझे शीघ्र कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे मैं तत्काल घर पहुँच जाऊँ।' पर अप्सरा ने एक न सुनी और नाना प्रकार के अनुनय-विनय तथा विलापादि से वह उसे अनुकूल करने की चेष्टा करती गयी। ब्राह्मण ने अन्त में कहा-'वरूथिनी! मेरे गुरुजनों ने उपदेश दिया है कि परायी स्त्री की अभिलाषा कदापि न करे। इसलिये तू चाहे विलख या सूखकर दुबली हो जा, मैं तो तेरा स्पर्श नहीं कर सकता, न तेरी ओर दृष्टिपात ही कर सकता हूँ।'

यों कहकर उस महाभाग ने जल का स्पर्श तथा आचमन किया और गार्हपत्य अग्नि को मन-ही-मन कहा-'भगवन्! आप ही सब कर्मों की सिद्धि के कारण हैं। आपकी ही तृप्ति से देवता वृष्टि करते और अन्नादि की वृद्धि में कारण बनते हैं। अन्न से संपूर्ण जगत् जीवन धारण करता है, और किसी से नहीं। इस तरह आपसे ही जगत् की रक्षा होती है। यदि यह सत्य है तो मैं सूर्यास्त के पूर्व ही घर पर पहुँच जाऊँ। यदि मैंने कभी भी वैदिक कर्मानुष्ठान में काल का परित्याग न किया हो तो आज घर पहुँचकर डूबने के पहले ही सूर्य को देखूँ। यदि मेरे मन में पराये धन तथा परायी स्त्री की अभिलाषा कभी भी न हुई हो तो मेरा यह मनोरथ सिद्ध हो जाए।'

ब्राह्मण के ऐसा कहते ही उनके शरीर में गार्हपत्य अग्नि ने प्रवेश किया। फिर तो वह ज्वालाओं के बीच में प्रकट हुए मूर्तिमान अग्निदेव की भाँति उस प्रदेश को प्रकाशित करने लगा और उस अप्सरा के देखते-ही-देखते वह वहाँ से गगन मार्ग से चलता हुआ एक ही क्षण में घर पहुँच गया। घर पहुँचकर उन ब्राह्मण देवता ने पुन: यथाशास्त्र सब कर्मों का अनुष्ठान किया और बड़ी शान्ति एवं धर्म-प्रीति से जीवन व्यतीत किया।

(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 61)

प्रेरक कथानक

– संकलित

किसी नदी के किनारे अच्छी वेशभूषा के महात्मा मछली भून रहे थे। एक विद्वान् पण्डित उसी रास्ते से निकले। देखकर बड़े आश्चर्य में पड़े, पूछा-''महाराज! आप मछली भून रहे हैं?'' महात्मा बोले-''हाँ!'' पंडित ने पूछा-''खाते हैं क्या?'' महात्मा ने उत्तर दिया-''हाँ!'' पण्डित ने पुन: पूछा-''तब तो आप शराब भी पीते होंगे?'' महात्मा ने कहा-''हाँ!'' पण्डित ने फिर पूछा-''तब तो आप वेश्या-गमन भी करते होंगे?'' वहाँ वे (किसी समय के अच्छे महात्मा) झल्लाये, तमतमाकर खड़े हो गये, बोले-''अरे पण्डित! जब हम पतित हो ही गये तो ऐसा कौन-सा कुकर्म है जो हम न कर लें? क्या बार-बार पूछते हो, खोपड़ी खा रहे हो? अपना रास्ता नापो, हम तो अपने कर्मों को रोते ही हैं।''

हमारे जीवन मार्ग में अनेक आकर्षक प्रकाश हमें अपनी राह से खींचने के लिये चमकेंगे, कर्तव्य मार्ग से विचलित करने का प्रयास करेंगे, लेकिन हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी प्रगति की सुई को अपने वास्तविक लक्ष्य के ध्रुव तारे की ओर से कभी टलने न दें।

– स्वेट मार्डेन

भगवान् श्रीकृष्ण की धर्मयुक्त दैवी राजनीति

– श्री गौतम

भगवान् श्रीकृष्ण का जीवन अलौकिक था। जो लोग सनातन-धर्म की शीतल छाया में अपना जीवन-यापन करते हैं, उनके लिये तो वे परम पुरुष के पूर्ण अवतार-'स्वयं भगवान्' ही हैं-और उदार-हृदय इतरमधर्मावलम्बी भी, जो उन्हें अवतार नहीं मानते, भगवान् श्रीकृष्ण को एक महापुरुष-अद्भुत पुरुष-ऐसा पुरुष, जिससे अधिक श्रेष्ठ पुरुष कोई अब तक नहीं हुआ-मानते हैं। इन सब बातों पर विचार करने के बाद श्रीकृष्ण क्या थे, उनकी लीला क्या थी, यह समझना मन-बुद्धि के परे का विषय हो जाता है, जो आध्यात्मिक साधना के द्वारा-अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है। पर आजकल लोग तर्क की तली में पड़े हुए हैं, बुद्धिवाद का बाजार गरम है; इसलिये उन लोगों को, जो बुद्धि से आगे बढ़कर नहीं जा सकते या जाना ही नहीं चाहते व वहाँ तक जाने में विश्वास नहीं करते, प्रबल प्रमाणों और अखण्डनीय युक्तियों के अभाव में-तो कभी संतोष हो ही नहीं सकता। इसलिये उनके सामने अपनी बातों को सप्रमाण और युक्ति सहित उपस्थित करना ही वाञ्छनीय होगा।

यों तो श्रीकृष्ण के जीवन पर, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है; तथापि इस लेख में हम केवल भगवान् की धर्मयुक्त राजनीति पर ही अपने विचार प्रकट करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण की राजनीति को समझने में प्राय: लोग भूल किया करते हैं। कोई-कोई पाश्चात्य विद्वानों के राजनीतिक सिद्धान्तों को श्रीकृष्ण के सिद्धान्तों के स्थान में बैठाने की चेष्टा किया करते हैं। पर यह भारी भूल है; क्योंकि पश्चिम में जिस राजनीति का विवेचन यूनान और रोम में हुआ फिर उसके बाद सोलहवीं शताब्दी से जिस राजनीति का विकास होते-होते जिस रूप में आज वह संसार के सामने है, उसमें और श्रीकृष्ण की राजनीति में आकाश-पाताल का अन्तर है। पाश्चात्य राजनीति में राजधर्म (*Polity*) की बड़ी दुर्दशा की गयी है। इटाली में मैकियावेली (*Machiavelli*), प्रशिया में बिस्मार्क, फ्रान्स में रिचल्यू तथा भरत में भी चाणक्य ने राजनीति को बिल्कुल स्वार्थ की भित्ति पर-फिर वह राष्ट्रीय स्वार्थ ही क्यों न हो-खड़ा किया। *'My country, right or wrong'* मेरा देश ठीक या बेठीक जो हो, वही ठीक है। इन्हीं सिद्धान्तों का अवलम्बन इन राजनीति-विशारदों ने करवाया है और यही कारण है कि आज यूरोप की राजनीति कंस की राजनीति हो गयी है। यानी *'Blood and iron policy'*- लोहे से रुधिर बहाना और स्वार्थसिद्ध करना (रक्तपात और स्वार्थ सिद्धि)! कैसी कठोर और घृणित नीति है।

यूरोप ही नहीं, समस्त संसार अब *Humanism* (मनुष्यत्व) को ही राजनीति का लक्ष्य बनाना चाह रहा है, जिसके लिये पहले भारत के विरुद्ध शिकायत रहती थी। आजकल यूरोप में राष्ट्रीय स्वार्थों के नाम पर भयंकर द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो रही है, और इसलिये अब चार सौ वर्षो के पश्चात् यूरोप को अंतर्राष्ट्रीय कल्याण का ध्यान हुआ है। यूरोप को अपनी जघन्य नीतियों का अब कुछ-कुछ पता चला है। मोह-निद्रा और स्वार्थ की कर्मनाशा में निमग्न यूरोप आज अपनी आँखें खोलना चाहता है। उसे अब सच्ची राजनीति की उपयोगिता का कुछ-कुछ भान हो रहा है। यह सच्ची राजनीति भगवान श्रीकृष्ण ने बहुत पहले महाभारत के अवसर पर बतायी थी। यानी जो पापी है, नराधम है, नृशंस है, वह दण्ड का पात्र है; फिर चाहे वह अपना भाई ही क्यों न हो। यही सच्ची राजनीति है, यही सच्चा धर्म है। चाहे जिस क्षेत्र में जाइये; ***'नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम-'*** बिना आत्मत्याग के न इस लोक में सुख है और न परलोक में। स्वार्थ व्यक्तिगत हो अथवा राष्ट्रीय, वह निन्द्य और त्याज्य है।

राजधर्म को न्याय और सत्य का पोषक होना चाहिए। राजनीति का उपयोग राजधर्म के निबाहने के लिये ही होता है, इसलिये जब तक राजनीतिक नियंत्रण राजधर्म न करेगा, तब तक राजनीति हेय और घातक ही रहेगी।

भगवान् श्रीकृष्ण उस धर्मयुक्त राजनीति के प्रतिपादक और पोषक थे जिसका कि वर्णन ऊपर किया गया है। भविष्य में मानव जाति का कल्याण तभी सम्भव है, जब इसी राजनीति का उपयोग किया जाएगा।

एकतन्त्र, कुलीनतन्त्र, प्रजातन्त्र, जनतन्त्र-किसी भी नाम से पुकारा जाने वाला शासन क्यों न हो, जब तक उसका प्राण मनुष्य का कल्याण चाहने वाली वह सच्ची धर्मयुक्त राजनीति नहीं है, तब तक पूर्ण सुख और शान्ति स्थापित होना दूर है और इसी कारण संसार के राजनीति विशारदों के बीच उनकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा थी। महाभारत हुआ-कौरवों के पाप, स्वार्थ और दुष्कर्म से। जो ऐसा समझते हैं, भगवान् 'श्रीकृष्ण ने महाभारत-संग्राम कराया' वे ठीक नहीं समझते। महाभारत के निमित्त कारण भगवान् श्रीकृष्ण भले ही हों; पर महाभारत का समर अवश्यम्भावी था। अच्छा हुआ, भगवान् श्रीकृष्ण ने उसमें पड़कर सत्य, दया और सभ्यता की रक्षा की। अर्जुन को पात्र बनाकर उसके बहाने निष्काम-धर्म का एक बड़ा भारी सिद्धान्त प्रत्यक्ष क्रिया रूप में सामने रख दिया। भगवान् ने स्वयं अगणित अत्याचारी राजाओं का विनाश किया। पर कहीं स्वयं राजसिंहासन पर वे नहीं बैठे; जिसको मारा, उसी के पुत्र या सम्बन्धी को राजगद्दी पर बैठाकर निष्काम कर्म का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया। संसार का सच्चा राजनीतिपटु वही है, जो अपनी राजनीति की पुष्टि आध्यात्मिक साधनों द्वारा करता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जब देखा कि महाभारत होने के सब लक्षण मौजूद हैं; युद्ध हुए बिना रहने का नहीं, इसलिये कम-से-कम इतना ही हो जाये तो बहुत है कि 'जो युद्ध हो, वह पशुओं और राक्षसों की भाँति अंधाधुंध न हो, बल्कि योद्धा धर्मयुक्त पद्धति से रणाङ्गण में उतरें और एक-दूसरे की शक्ति की परीक्षा लें। ऐसा होने से कम-से-कम बहुत-सा अनावश्यक रक्तपात बच जाएगा और सबसे बड़ी बात यह होगी कि धर्म की मर्यादा रह जायेगी, जिससे आगे लोगों की लड़ाई का आदर्श होगा तो वह धर्म-युद्ध होगा, अधर्मयुद्ध नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण राजनीति के पहुँचे हुए विद्वान थे। उन्होंने ऐसी कोई गलती नहीं की, जिन गलतियों का शिकार आज संसार हो रहा है। आज यूरोप में राष्ट्र (*State*) और धार्मिक संस्था (*Church*) के बीच युद्ध और तनातनी है। इसका परिणाम बहुत बुरा हो रहा है। सत्य तो यह है कि जब तक राष्ट्र और धार्मिक संस्था का आपस में झगड़ा रहेगा, तब तक शान्ति नहीं होगी। श्रीकृष्ण ने राजनीति का सच्चा स्वरूप तथा उसका अन्त:करण समझ लिया था और उसका प्रयोग भी किया था।

संसार के इतिहास में भगवान् श्रीकृष्ण ही एक ऐसे राजनीतिज्ञ हो गये हैं, जिनको आदर्श मानने से संसार का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। महाभारतरूपी नाटक के पात्र अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार सारे कर्म करते हैं अवश्य, द्रष्टा है वे ही मधुर मुरली वाले श्रीकृष्ण, जो वहाँ अर्जुन के घोड़ों की लगाम हाथ में लिये मुस्कुरा रहे हैं। महाभारत में सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, पशुबल और धर्मबल, अन्धकार और प्रकाश अथवा यों कहिये कि देव और असुरों का संग्राम होता है और अन्त में भगवान श्रीकृष्ण की देखरेख में दैवी गुणों की विजय और आसुरी गुणों की हार होती है। भगवान् श्रीकृष्ण-जैसे महापुरुष ही धर्म-बल पर चलने वाले निर्बल और निस्सहाय पाण्डवों के सच्चे सहायक हो सकते थे। जिस समय दुर्योधन के सौभाग्य-सूर्य की प्रचण्ड ज्वाला के सामने ताकने तक का साहस भी किसी में नहीं देखने में आता था, जिसके पितामह भीष्म-जैसे फील्ड-मार्शल, द्रोण, कर्ण और अश्वत्थामा-जैसे जनरल, जिसकी बड़ी भारी सेना थी, उसका डर किसे न होता? पर श्रीकृष्ण, जिनका अवतार ही धर्म की स्थापना के लिये हुआ था, धर्म पक्ष में आये और अर्जुन के सारथी बनकर ही उन्होंने उस राजनीति

(शेष पृष्ठ 27 पर)

शिक्षा

– पी. एन. सिंह

चीन में दो दोस्त थे। एक गरीब बाप का बेटा था। दूसरा जवाहरातों के सौदागर का बेटा था। दोनें बचपन में संग खेल-कूद कर बड़े हुए। एक मजदूरी करने लगा। दूसरा जवाहरातों की दुकान पर बैठा। दोनों की शादी हुई। दोनों के समय से बेटे हुए।

जब गरीब का बेटा बड़ा हुआ तो वह पढ़ने भेजा गया। गरीब जितना पढ़ा सकता था उतना पढ़ाया। फिर बेटे को काम करने के लिये कहा। गरीब की बीबी ने कहा, ''आप बताते थे कि आपके एक जवाहरातों के सौदागर दोस्त हैं। अगर हमारा बेटा जवाहरातों का काम उनके पास रहकर सीख ले तो कम से कम हमारी जिन्दगी से तो अच्छी उसकी जिन्दगी गुजरेगी।'' गरीब बोला, ''अरी भागवान, तू ठीक कहती है। कल जाकर देखता हूँ कि मेरे दोस्त को मेरी याद भी है या नहीं।''

दूसरे दिन गरीब अपने बेटे को लेकर अपने दोस्त, जवाहरातों के सौदागर की गद्दी पर गया। अमीर दोस्त ने जैसे ही अपने बचपन के गरीब दोस्त को देखा गद्दी से उठकर स्वागत किया। प्यार से पास बैठाया और हाल-चाल पूछा।

गरीब दोस्त ने बताया, ''मेरे यही एक लड़का है। यही एक तुम्हारा भतीजा है। हमारी तो जिन्दगी मेहनत-मजूरी में कट रही है। इसे अपने साये में ले लो। जवाहरातों का काम सिखा दो तो इसकी जिन्दगी बन जायेगी। तुम्हारा मुझ पर बड़ा एहसान होगा।''

जवाहरातों के सौदागर दोस्त ने अपने गरीब दोस्त के मुँह पर हाथ रखकर कहा, ''अहसान! यह क्या बात कर रहे हो। ऐसा न बोलो। इसे अपने बेटे की तरह की पूरा काम सिखाऊँगा। इसे मेरे पास छोड़ जाओ। यह शाम को घर आ जायेगा। रोज सवेरे भेज देना।''

गरीब दोस्त खुश हुआ। लड़के को दुकान पर छोड़कर घर आ गया। खुश-खुश बीबी को सब बात बताई।

शाम को जब बेटा घर आया तो पूछा, ''चाचा जी ने आज क्या सिखाया?''

लड़का बोला, ''कुछ नहीं। मुझे अपने पास बैठने के लिये कहा। फिर एक सफेद गोली देकर कहा यह मोती है। इसे हाथ से टटोलते रहो और मन ही मन मोती बोलते रहो। फिर अपने ग्राहकों से बात करने लगे।''

गरीब दोस्त ने सोचा शायद फिर कभी सिखायें या पढ़ायें। रोज-रोज वह यही सवाल करता कि चाचा जी ने क्या सिखया या पढ़ाया। रोज-रोज लड़का कहता कि आज फलाँ पत्थर देकर कहा कि हाथ से टटोलते रहो, मेरे पास बैठे रहो, और ग्राहकों से बात करते रहे।

छह माह गुजर गये। अब भी वही जवाब मिलता था। गरीब को ताब न रही। वह दूसरे दिन अमीर दोस्त की दुकान पर गया। लड़का वहाँ अमीर दोस्त के पास गद्दी पर बैठा था। साफ सुथरे कपड़े पहने जैसे कोई रईस। गरीब दोस्त ने कहा, ''भाई, तुम को मैंने इसकी जिन्दगी बनाने के लिये कहा था। तुम तो इसे काम नहीं सिखा रहे हो बल्कि बिगाड़ रहे हो। मैं यह ठाठ-बाट कहाँ से इसे बराबर दे सकता हूँ।''

अमीर दोस्त ने कहा, ''मित्र बैठो! गुस्सा क्यों होते हो। मैं तो इसे रोज काम सिखा रहा हूँ।''

गरीब दोस्त ने कहा, ''कहाँ? यह तो कहता है कि कोई एक पत्थर देकर इसे हाथ से टटोलते रहने को कहते हो और नाम बता देकर उसे नाम लेते रहने को कहते हो।''

अमीर दोस्त बोला, ''अच्छा, तो यह बात है। क्या यह बिना सिखाये-पढ़ाये खुद सीख-पढ़ जाएगा? हाँ मेरा सिखाने का तरीका व्यावहारिक है। देखो अभी परीक्षा को जाती है।'' फिर लड़के से बोला, ''बेटे, वहाँ कोने में जवाहरातों की ढ़ेरी है। उसमें से सबसे कीमती और और सबसे सस्ते दो जवाहरात ले आओ।'' लड़का जाकर

तुरन्त दो जवाहरात ले आया और बोला, ''चाचा जी, यह हीरा सबसे कीमती है। इसका मुँह माँगा दाम लाखों में मिलेगा।'' सेठ ने जवाहरात ले लिये। अमीर दोस्त ने फिर अपने हैड मुनीम को आवाज लगाई। मुनीम दूसरी तरफ काम में लगा था। मुनीम जब आया तो सेठ बोला, ''मुनीम जी कल की ढ़ेरी में से सबसे कीमती और सबसे सस्ते दो जवाहरात ले आयें।'' मुनीम ढ़ेरी के पास कोने में गया। तुरन्त घबरा कर चीखा, ''सेठ जी गजब हो गया। यहां सबसे कीमती हीरा तो है ही नहीं।'' सेठ ने कहा, ''अच्छा! ठीक है। आप अपने काम को करें। मैं देख लूँगा।'' फिर अपने दोस्त से बोला, ''क्या तुम्हें अभी भी अपने बेटे की शिक्षा पर शक है? यह लड़का यहाँ बैठकर जवाहरात का नाम सीखता था। उसे हाथ से टटोल कर उसके गुणों-भार, रूप, रंग को पहचानता था। मेरे पास गद्दी पर बैठे-बैठे मेरी ग्राहक से बातें सुनकर जवाहरात के गुण और भाव-ताव करना सीखता था। फिर जवाहरातों के व्यापारी की तरह उठना-बैठना, कपड़े पहनना, बर्ताव करना, रोज-रोज सीखता था। क्या मैंने इस लड़के को कुछ नहीं सिखाया?''

गरीब दोस्त की समझ में आ गया कि मात्र किताबी शिक्षा ही शिक्षा नहीं है।

आप कैसी शिक्षा पसन्द करेंगे। किताबी या व्यावहारिक? और क्यों? क्या किताबी शिक्षा जरूरी नहीं है? क्या व्यावहारिक शिक्षा जरूरी नहीं है? इन दोनों की जीवन में जरूरत है या नहीं? किताबी शिक्षा कब और व्यावहारिक शिक्षा कब और किस लिये ठीक रहती है? व्यावहारिक शिक्षा अभ्यास है, उसी से स्वभाव बनता है, संस्कार बनता है।

पृष्ठ 25 का शेष

भगवान् श्रीकृष्ण की धर्मयुक्त दैवी राजनीति

का परिचय दिया, जिसका पालन करने से मनुष्य ऊँचा उठकर देवों के स्थान तक पहुँच सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण का यह कार्य संसार के इतिहास में एक अद्वितीय और अद्भुत कार्य था। यूरोपीय इतिहास में पोलैंड देश को उसके पड़ोसी राज्यों ने हड़प लिया; पर किसी की मजाल न थी जो चूँ तक करता। नेपोलियन ने निर्धन देशों को रौंद डाला; पर अन्य देश न केवल कुछ नहीं बोले, बल्कि उल्टे उसी की खुशामद में लगे रहे। इंग्लैण्ड ने अपने स्वार्थों की रक्षा के लिये उससे लोहा अवश्य लिया; पर उसमें वह धर्मपरायणता और वह राजनीतिक त्याग कहाँ था, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने पद-पद पर दिखाया था।

भगवान् श्रीकृष्ण की राजनीतिपटुता अपना जोड़ नहीं रखती। उसमें त्याग, सत्य, दया, न्याय और मानवोचित सभी गुणों का समावेश है, जिससे वह कभी असफल हो ही नहीं सकती। उस राजनीति में न तो व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के लिये स्थान है और न केवल देश तथा जातिगत स्वार्थों का ही ध्यान है, उसमें न मदमस्ती है और न मूर्खतापूर्ण उचक्कापन। वह राजनीति केवल एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये है और उस लक्ष्य का नाम है 'अभ्युदय तथा कल्याण।' जिस उन्नति से परमार्थिक उन्नति में बाधा न हो, वही यथार्थ उन्नति है और वही वाञ्छनीय है। आजकल जिस नीचता और वज्रस्वार्थ को राजनीति के नाम से पुकारा जाता है, वह सर्वदा जघन्य है। इस समय, जबकि चारों ओर के स्वार्थ आपस में टकरा रहे हैं, पाशविक युद्ध हो रहे हैं, शान्ति स्थापना बहुत दूर जान पड़ती है, आवश्यकता इस बात की है कि जो मानव जाति के कल्याणार्थ परम आवश्यक है, भगवान् श्रीकृष्ण की राजनीति का रहस्य समझा जाय और उसका अनुसरण किया जाय। ऐसा करने से सारे संसार में सुख-समृद्धि का प्रादुर्भाव हो सकता है। अभी तक भगवान् की रहस्य वाणी का शङ्खनाद फूँका जाता रहा है, पर अब समय आ गया है कि उनकी दैवी धर्मसम्मत राजनीति द्वारा संसार-श्मशाम को पुन: नन्दन वन में परिणत किया जाय।

*

चेतना शक्ति का प्रादुर्भाव

– ओमसिंह

एक व्यक्ति को कबूतर पालने का शौक था। इसलिए उसके पास कबूतरों के कई जोड़े थे। उसने एक बार अपने पालतू कबूतरों के अण्डों के साथ बाज का एक अण्डा भी रख दिया। यथा समय कबूतरों के बच्चों के साथ बाज का भी बच्चा निकला। अब वह बच्चा कबूतरों के अन्य बच्चों की तरह ही वहाँ बन्दी जीवन जीने लगा। धीरे-धीरे वह तद्रूप ही हो गया। बाज के पंखों में जो शक्ति होती है, वह शक्ति क्षीण होती रही। उसकी चोंच में भी बाज की सी तेजी न रही। वह शीतलता का बंदी जीवन व्यतीत करने लगा।

एक दिन उन कबूतरों के मालिक को उस पक्षिराज की दुर्दया पर करुणा हो आई। उसने मन ही मन तर्क-वितर्क किया। कायरता के वातावरण में पलने वाले कबूतरों के साथ रखकर मैंने पक्षियों के सम्राट की कैसी दशा कर डाली है। इन दुर्बल जीवों के साथ रहते-रहते यह बलवान पक्षी वास्तविक क्षमता खो बैठा है। ऐसा सोचकर उसने उस पक्षिराज को उसकी वास्तविकता प्राप्त करवाने के लिये इस बंदी वातावरण से मुक्त करने का निश्चय किया।

उस व्यक्ति ने उस पक्षिराज को हाथों में लेकर ऊपर उठाया और कहा,-'पक्षिराज! तू पक्षियों का सम्राट है। सब पक्षियों में महान है। तू सबका स्वामी है, तू इन पक्षियों पर शासन के लिये बना है। तू अत्यन्त शक्तिशाली है। इन छोटे व निर्बल पक्षियों के संसर्ग में रहने से तू अपने वास्तविक स्वरूप को विस्मृत कर बैठा है। अपने प्रबल सामर्थ्य को इस विपरीत वातावरण में तुमने विनष्ट कर दिया है। अपनी शक्ति के परम तेजोमय रन्ध्रों को तुमने गहन अंधकार से आवृत कर दिया है। अपनी छिपी हुई महान शक्तियों से अनभिज्ञ रहकर तू आज निकृष्ट जीवन व्यतीत कर रहा है। हे पक्षिराज! तू साधारण नहीं है। नगण्य नहीं है। तू सामान्य पक्षियों में रहने के लिये नहीं बना है। तेरा आसन इन सबसे उच्च है। तेरी शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल हैं। उठ! तू अपनी शक्ति पहचान।'

ऐसा संकेत कर उसने बाज को ऊपर उठाया और दोनों हाथों से उड़ाया। बाज उड़ा किन्तु कुछ ही समय में पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह जैसे थक गया हो। लेकिन उस व्यक्ति ने रोज उसे इसी तरह उड़ाने का अभ्यास चालू रखा। दूसरे दिन, तीसरे दिन, लगभग एक सप्ताह तक इस प्रकार उड़ाने की पुनरावृति होती रही। अब तक पिंजरे में बद्ध बाज में नई शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और वह उड़कर आसमान में चला गया। उसके जीवन में एक नवीन पृष्ठ खुला। अपनी सामर्थ्यय को पहचाना और उसका उपयोग किया।

बाज की तरह क्या हम भी अपने वास्तविक स्वरूप को विस्मृत नहीं कर बैठे?

भटकाव और असत् चिंतन से पनपी हीनत्व की भावना में हमने अपनी अधोगति कर ली है। अधोगति से बाज अपने सामर्थ्य को पहचानने की यात्रा कर सकता है तो क्या हम नहीं कर सकते? कुछ दिन के अभ्यास में उसने अपनी विस्मृत वास्तविकता को पा लिया तो हम क्यों नहीं प्राप्त कर सकते?

हम साधारण व्यक्ति नहीं हैं। हम शुद्ध आत्मस्वरूप शक्ति के पुंज हैं। हम महान तेजस्वी हैं, पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न हैं। प्रत्येक कार्य में अपना पृथक व विशिष्ट भाव रखकर हम सर्वोत्कृष्ट कार्य करते हैं। हम अपनी शक्तियों के स्वामी हैं। अपनी अद्भुत शक्तियों पर जो आवरण आ गया है, उस आवरण को हम हटाएंगे ताकि अलौकिक बुद्धि-सामर्थ्य और सुप्त शक्तियों की जागृति कर अपने वास्तविक स्वरूप में आएँ। इसके लिये अनुकूल अभ्यास की आवश्यकता है। अभ्यास निरंतर हो, नियमित हो। श्री क्षत्रिय युवक संघ यह अभ्यास करवाता है अपनी शाखाओं में, अपने शिविरों में। आवश्यकता है निरंतर अभ्यासरत रहने की। हम अभ्यासरत रहें तो माँ भगवती हमारे इस अनुष्ठान पर कृपा दृष्टि रखेगी।

विशेष है स्त्री

– मृदुला सिन्हा, पूर्व राज्यपाल

आज जिस मायने में स्त्री विमर्श की चर्चा है, मैं उसमें विश्वास नहीं करती। परिवार के घटक स्त्री, पुरुष, बच्चे और वृद्ध हैं। सेवक-सेविकाएँ भी। इसलिए इनका अलग विमर्श नहीं हो सकता। मैं उस स्त्री विमर्श से सहमत नहीं हूँ जो उसे परिवार से अलग खड़ा करता है। मैंने इन दिनों कहना प्रारम्भ किया है कि 'स्त्री सशक्तिकरण, पुरुष सशक्तिकरण, बच्चा सशक्तिकरण और वृद्ध सशक्तिकरण नहीं, परिवार सशक्तिकरण के उपाय ढूंढने चाहिए।' तभी समस्याओं का सही विवेचन और समाधान होगा। आलोचकों का मैं सम्मान करती हूँ। पर अपने साहित्य, विचार की समीक्षा में कोई दखल नहीं दे सकती। आलोचक मेरे विचारों को जैसे भी समझें, उसे शिरोधार्य करती हूँ।

ग्रामीण जीवन के स्त्री पात्रों को देखकर मेरा निष्कर्ष रहा कि पार्वती, सीता, सावित्री, मन्दोदरी, उर्मिला, भारती जैसे पात्रों के अंश आज भी जीवित हैं। इनकी कथाएँ इतनी तरह से सुनाई जाती रही हैं कि पीढी-दर-पीढी इन्हें सुनकर, मंथन कर महिलाएँ इन्हें आत्मसात करती रहीं। हर गाँव में सीता, सावित्री व अन्य महिला पात्र हैं। भारतीय युवतियों के लिये सीता-सावित्री ही आदर्श हो सकती हैं। उनमें दृढ़ता, वाकपटुता थी। वे आदर्श रहीं और आज भी हैं। इन पात्रों के विचार-व्यवहार की व्याख्याकार वर्तमान पीढी के लिये उनके व्यक्तित्व को विश्वसनीय बनाना उपन्यास के माध्यम से संभव है।

भारतीय परम्परा में स्त्री-पुरुष की स्थिति और सम्बन्ध दिखाने के लिये शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की कल्पना है। इसमें दोनों में से कोई किसी से कम नहीं है। दोनों एक-दूसरे पर आधारित हैं। पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। यह सोच और व्यवहार ही समाज में आदिकाल से स्त्री-पुरुष की भूमिका दर्शाता है। कभी किसी काल में स्त्री का विकास अवरुद्ध हुआ। किसी काल में वह पुरुष से अधिक विकासोन्मुख भूमिकाएँ निभाती है। मैं इस निष्कर्ष पर आई कि स्त्री पुरुष के बराबर नहीं है, वह विशेष है। प्रकृति और संस्कृति ने उसे सृष्टि, समाज और संस्कार निर्माण का विशेष दायित्व दिया है। इसलिये उसे विशेष शिक्षा, विशेष स्वास्थ्य सुविधाएँ, विशेष सुरक्षा और विशेष सम्मान चाहिए। जो समाज स्त्रियों को इन विशेष सुविधाओं और अवसरों से पोषित करता है, वह उन्नत समाज होता है।

✻

'वक्त आयेगा तब पहचान होगी' ऐसे कहने वाले लोग कभी पहचानते नहीं। प्राय: ऐसे लोग तब पहचानते हैं जब वक्त उनके हाथ से निकल चुका होता है। शेष पश्चाताप रहता है और सामान्यजन इसी पश्चाताप का जीवन जिया करते हैं। वक्त आने पर सोने की पहचान तो जरूर होगी, पर तब न सोना रहेगा और न समृद्धि। समय से पहले ही समय की पहचान, पहचान है।

– पू. तनसिंहजी

अब और तब

– भंवरसिंह रेड़ी

पन्द्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस को हमारा देश स्वतंत्र हुआ। इससे पूर्व हमारे देश पर ब्रिटिश शासन था। राजस्थान में राजाओं का शासन था तथा गाँवों में ठिकानेदार, जागीरदार थे।

देश को आजाद कराने वाले लोगों ने त्याग किया, अनेक कष्ट सहे, लाठी-गोलियाँ खाई तथा फाँसी के फंदे पर हँसते-हँसते चढे। अन्ततोगत्वा अंग्रेजों द्वारा पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालीस को भारत को स्वतंत्र कर दिया गया। पहले देश परतंत्र था, अब स्वतंत्र है।

देश स्वतंत्र होने के बाद सम्प्रभुत्व गणतंत्रात्मक राज्य स्थापना के लिये देशी रियासतों का भारत संघ में विलीनीकरण हुआ और जागीरों का उन्मूलन हुआ। स्वतंत्र भारत की परिकल्पना उस समय की राजतंत्र व्यवस्था से कहीं अधिक मनोहर की गई थी। भारत के नागरिकों को बताया गया कि राजतंत्र में तो राजा का बेटा राजा होता है, जागीरदार का बेटा जागीरदार होता है, लेकिन प्रजातंत्र में प्रजा के द्वारा चुने हुए व्यक्ति, प्रजा के लिये ही राज करेंगे। प्रत्येक पाँच वर्ष बाद चुनाव होते रहेंगे। सांसद व विधायक जनता द्वारा चुने जाकर, जनता के लिये, जनता पर शासन करेंगे जो राजतंत्र से कहीं श्रेष्ठ होगा। कहा गया कि राजा निरंकुश होते हैं लेकिन प्रजातंत्र में ऐसा नहीं होगा। सबको पढने, लिखने, बोलने, रहने की स्वतंत्रता होगी। सबको समान अधिकार मिल जाएँगे। सबका सर्वांगीण विकास होगा। योजनाएँ बनेंगी, पिछड़ों को आगे लाया जाएगा। समाजवादी समाज की व्यवस्था होगी। जागीरदार लोग गाँव वालों के साथ अन्याय करते थे, अब देश आजाद होने के बाद प्रजातंत्र में ऐसा नहीं होगा।

देश को स्वतंत्र हुए इकहतर वर्ष बीत गए, क्या वह स्वप्न साकार हो गया? आज देश की परिस्थितियाँ चिन्ताओं, निराशाओं से आच्छादित हैं। आज के नेताओं ने राष्ट्र को विनाश, ह्रास और टूटन के कगार पर ला खड़ा किया है। आज राष्ट्रीय जीवन के सामाजिक, नैतिक राजनैतिक मूल्य गिर चुके हैं। आज चरित्रहीनता और अनैतिकता का बोलबाला है। आज के राजनीतिज्ञों की राष्ट्र के प्रति प्रमाणिकता संदेह के गर्त में गिर चुकी है। देश को संचालित करने वालों की नीतियाँ वोटों की राजनीति में फंसकर रह गई हैं। राष्ट्र के लिये यह संक्रमण काल है। सब अपने-अपने कर्तव्य मार्ग से भटक चुके हैं तथा हमको दिशाविहीन मार्ग पर ला खड़ा किया है। आइये विचार करें कि निम्न आयामों में स्वतंत्रता के बाद क्या परिवर्तन आया है।

राष्ट्रीय भावना :- देश को आजाद कराने के लिये तत्कालीन देसवासियों के दिलों में राष्ट्रीय भावना जागृत थी। राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना, राष्ट्र के प्रति त्याग, बलिदान की भावना जागृत हुई थी। तभी राष्ट्र को विदेशियों की बेड़ी से मुक्त कराने की एक लहर उठी थी तथा दो सौ वर्षों से जमे हुए विदेशी शासकों को उखाड़ फैंका था। लेकिन आज राष्ट्रीय भावना का लोप हो चुका है।

आज के राजनेता, व्यापारी, अधिकारी, कर्मचारी सब राष्ट्र हित को भूलकर स्वार्थ के दलदल में फँस चुके हैं। राष्ट्र हितों को ताकपर रख दिया गया है। तभी बड़े-बड़े नेताओं पर रिश्वतखोरी, घोटालों व आय से अधिक सम्पत्ति रखने के मुकदमे न्यायालयों में भीड़ कर रहे हैं। अनेक व्यापारी घी, तेल, दूध, मसालों व अन्य खाद्य सामग्रियों में मिलावट के कारण व बिना हिसाब की राशि रखने आदि के मामलों में पकड़े जाते हैं। अनेक अधिकारी, कर्मचारी रिश्वत लेते रंगे हाथों आए दिन पकड़े जा रहे हैं। क्या राजाओं के राज में इतना भ्रष्टाचार था?

अंग्रेजों व वर्तमान राजनेताओं की समान नीति :- अंग्रेजों की नीति फूट डालो व राज करो की थी। जनता के सुख-दुख से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था। वर्तमान राजनेताओं की नीति भी फूट डालकर सत्ता में रहने की है। येनकेन प्रकारेण उनके दल का शासन आ जाना चाहिए, चाहे मंदिर-मस्जिद की बात हो, चाहे आरक्षण का पासा फेंका जाय, चाहे अपने हित साधने के लिये कानून में संशोधन कर किसी समुदाय को लुभाया

जाए। अपनी गद्दी कायम रहे, जनता में फूट पड़े उससे कोई सरोकार नहीं। राजाओं व जागीरदारों के शासन में ऐसा कुछ नहीं था। प्रजा-प्रजा सब समान समझी जाती थी और सभी के सुख दुख को समान महत्त्व दिया जाता। न तो किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय को मनमानी की छूट थी, न जाति या धर्म के आधार पर पक्षपात था। किसी के भी प्रति पूर्वाग्रह या दुराग्रह नहीं था।

नैतिकता :- पद प्राप्ति के लिये दल बदले जा रहे हैं। नये दल बना लिए जाते हैं। कहीं दलों का विलीनीकरण हो रहा है। बहुमत साबित करने के लिये, विपक्षी को अपने पक्ष में मतदान करवाने के लिये बड़ी-बड़ी रकम पेश की जा रही है। पदों का लालच दिया जा रह है। चुनावों में नियमों व कानूनों की धज्जियाँ उड़ाई जा रही है। धनबल व भुजबल की प्रधानता बढती जा रही है। चुनाव से पहले जो लगभग दिवालिया होते हैं वे पाँच साल बाद साधन सम्पन्न बन जाते हैं, उनके वारे-न्यारे हो जाते हैं।

राजतंत्र व्यवस्था में अनैतिकता का कोई स्थान नहीं था। राजकोष से शासक द्वारा निजी व्यय करने का कहीं उदाहरण नहीं मिलता था। राजकोष पर पूर्ण नियंत्रण होता था। सबकी सुरक्षा का दायित्व पूर्ण रूप से निभाया जाता था। आज की तरह राजतंत्र में घृणित भावना, भाषायी अथवा क्षेत्रीय भावना, धार्मिक विद्वेषता, प्रांतीय भावना, भाई-भतीजावाद, कुनबापरस्ती कहीं नहीं थी। सबको न्याय मिलता था। अपराध करने पर राजा अपने पुत्र को भी माफ नहीं करता था। बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी ने अपने पुत्र विजयसिंह को भी माफ नहीं किया। लेकिन आज तो चारों ओर अनैतिकता का साम्राज्य नजर आ रहा है।

प्रतिभाओं का सम्मान :- स्वतंत्र भारत में आरक्षण के कारण प्रतिभाओं को निराश होना पड़ रहा है। परिणामस्वरूप प्रतिभाएँ पलायन कर रही हैं। आज भारत के प्रतिभावान इंजीनियरों, डॉक्टरों और कला निपुण लोगों का लाभ अमेरिका, ब्रिटेन, जापान आदि देशों को मिल रहा है। राजतंत्र में बिना भेदभाव के उभरी हुई प्रतिभाओं को नौकरी में, नीति निर्धारण में मंत्री परिषद में उपयुक्त स्थान मिलता था। प्रतिभावान विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिये, बिना किसी भेदभाव के, सहयोग दिया जाता था। अपने दरबार में विद्वानों को उचित स्थान मिलता था।

आर्थिक :- परम्परागत स्वालम्बन के साधनों का आज पतन हो रहा है। बहु राष्ट्रीय कंपनियों का जाल बिछ रहा है। राष्ट्र को आर्थिक परतंत्रता की ओर धकेला जा रहा है। विज्ञान व टेक्नोलॉजी की प्रगति के नाम पर धीरे-धीरे लोग पंगु बन रहे हैं। स्वतंत्रता से पूर्व गाँवों में कताई, बुनाई, रंगाई, छपाई आदि कुटीर उद्योग थे जिनके कारण ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार मिलता था और बेरोजगारी की समस्या ही नहीं थी। गांधीजी का भी यही स्वप्न था कि गाँवों में कुटीर उद्योगों का अधिकाधिक विकास किया जाए पर आज सब कुछ विपरीत हो रहा है।

सांस्कृतिक :- विश्व का वैदिक गुरु कहलाने वाला भारत पाश्चात्य संस्कृति का गुलाम बनता जा रहा है। हमारे आजादी के दीवानों ने कभी विदेशी वस्तुओं का पूर्णतया बहिष्कार किया था वे ही हम भारतीय छोटी से छोटी वस्तु खरीदते समय मेड इन यू.एस.ए., इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान का मार्का देखना पसन्द करते हैं। संध्या वंदना, प्रार्थना, बड़े बुजुर्गों के पैर छूना, प्रणाम करना छोड़ चुके हैं। नमस्कार का स्थान गुड मोर्निंग-इवनिंग ने ले लिया है। धोती, कुर्ता, लहंगा, ओडणा के स्थान पर जीन्स, ओपन शर्ट, बैलबोटम में अपनी शान समझते हैं। पूजा पाठ को अंधविश्वासी व कूपमण्डूक मानने लग गए हैं। देशी भोजन के स्थान पर फास्ट-फूड चल पड़ा है। पाणिग्रहण संस्कार वेदी पर कराने के स्थान पर कोर्ट मैरिज को उत्तम व्यवस्था मानते हैं। लिव इन रिलेशनशिप जैसी दुष्प्रवृति को कानूनी जामा पहना दिया गया है। बूढे माता-पिता की सेवा की बजाय उन्हें वृद्धाश्रम में पहुँचाया जा रहा है। बुजुर्गों के पास बैठकर शिक्षा-दीक्षा लेने की बजाय नाइट क्लबों को अधिक पसन्द किया जा रहा है। भजनों की या राष्ट्रीय गीतों की बजाय फिल्मों के छिछले गीत अधिक पसन्द किए जा रहे हैं। राजतंत्र के समय की संस्कृति विलीन हो चुकी है।

स्वतंत्रता या स्वच्छंदता :- स्वतंत्रता का अर्थ है किसी दूसरे के अधीन न रहना, अपने पर पूर्ण नियंत्रण

रखना। स्वच्छंदता का अर्थ है अपनी मनमर्जी में दूसरों के हित-अहित को न देखना, मर्यादा का पालन न करना। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में बुनियादी अन्तर है पर स्वच्छंदता को ही स्वतंत्रता मान लिया गया है। चोरी, डकैती, हत्या, मारपीट, बलात्कार, लूटपाट जो चारों ओर दिखाई दे रहा है वह स्वच्छंदता का ही परिणाम है। स्वच्छंद आचरण को ही स्वतंत्रता मान लिया गया है। मादक द्रव्यों का सेवन बढ रहा है। संतरी से मंत्री तक मनमर्जी का आचरण है। भले इन्सानों में असुरक्षा की भावना बढ रही है।

स्वतंत्रता पूर्ण की शासन व्यवस्था में ऐसी स्वच्छंदता का स्थान नहीं था। समाज मर्यादाहीन आचरण को मान्यता नहीं देता था। कभी-कभार यदि कुछ ऐसा हो जाता तो शासक वर्ग के पास शिकायत होते ही जाँच कर हाथों हाथ निर्णय हो जाता। उदण्डता करने वालों को भय रहता अत: दुस्साहस होता ही नहीं। उदण्डता करने वलों को गाँव व राज्य छोड़ने तक की सजा होती और उसकी तुरन्त अनुपालना होती, जिससे उदण्डियों के दिलों में खौफ बना रहता।

न्याय व्यवस्था :- आज न्यायिक प्रक्रिया बदली है। फरियादी न्याय की भीख माँगते-माँगते आर्थिक व शारीरिक रूप से पूर्णतया जर्जर हो जाता है। पुलिस जाँच की लम्बी कवायद, फिर न्यायालय में कई वर्ष। एक न्यायालय से निकले तो ऊपर से ऊपर न्यायालयों में जाते रहो। न्यायालयों में लाखों की संख्या में मुकदमे अनिर्णित पड़े हैं। आम जन इस भीड़ में मुकदमा लड़ने की क्षमता ही खो बैठता है। कई बार तो जीवन ही व्यतीत हो जाता है।

राजतंत्र में निष्पक्ष निर्णय होता और तुरन्त होता तथा उसी समय उसकी अनुपालना होती।

यह कैसा विकास :- विकास के नाम पर पैसा पानी की तरह बहा है। बाँध बने, टूटे भी। सड़कें बनती है और थोड़े ही समय में मरम्मत की माँग उठ जाती है। जाँच के लिये आयोग बनते हैं पर आगे क्या कुछ हुआ है? विद्युतिकरण हो रहा है और विद्युत की चोरी प्रारम्भ हो गई। रोके कौन, या तो जनप्रतिनिधियों का सहयोग है या दादागिरी है। अस्पताल, विद्यालय भवन, पटवार घर, सामुदायिक विकास भवन आदि नामों से भवन बनते हैं और जल्द ही छत गिरने, टपकने, दरार की शिकायत आ जाती है। न मालूम कितनी योजनाएँ जनता के लिये घोषित की जाती हैं फिर बिचौलियों की जेब भरने के बाद कितना पैसा इन पर लग पाता है? घोषणाएँ हो जाती हैं-इतना विकास हुआ पर कितना पैसा काम आया और कितना लूटा गया, यह कौन देखे? विकास है या विनाश?

हमारे सफेद पोश नेता अधिकारियों से मिलकर विभिन्न मदों से देश की धन राशि को लूट रहे हैं। आतंक के विरुद्ध क्या हम ठोस कार्रवाई नहीं कर सकते? हम तो विदेशी दबाव में बहादुर सैनिकों के बलिदान से जीती गई भूमि भी दुश्मन को सौंप देते रहे हैं। इस प्रजातंत्र की व्यवस्था में क्या जन सामान्य की सुरक्षा गारंटी है? सर्वोच्च संस्था संसद पर भी आतंकी हमला हो जाता है। कश्मीर से वहाँ के वासियों को खदेड़ दिया जाता है और शासन व्यवस्था आँखें बन्द करके बैठी है।

युवा वर्ग अपने भविष्य के प्रति आशंकित है। नियम-कायदे बड़े लोगों के हाथों के खिलोने बन गए हैं। कोई अधिकारी का पद प्राप्त करता है तो यह नियुक्ति जनता की सेवा के लिये है, यह भाव नहीं है। धर्म, जाति के नाम पर संघर्ष बढता जा रहा है। देश में ऐसे तत्व निरंतर पनप रहे हैं जो देश की प्रगति के बाधक हैं। देश की यह स्थिति देखकर स्वतंत्रता सेनानियों की आत्मा रोती होगी। गाँवों और शहरों के बुजुर्ग लोग जिन्होंने राजतंत्र व्यवस्था देखी है, वे कहते रहते हैं कि इस राज से तो राजाओं का राज बहुत अच्छा था।

विज्ञान की तरक्की के कारण अनेक सुविधाएँ पनपी हैं हमारे देश में भी, परन्तु भ्रष्टाचार में उनका सदुपयोग नहीं हो पाया। इन सभी का कारण है चारित्रिक व नैतिक दुर्बलता। इस दुर्बलता को दूर किए बिना स्थिति दिन-दिन और बिगड़ेगी। आम नागरिक के जीवन में नैतिकता उतरे तभी सब व्यवस्थाएँ सुधर सकती हैं। इसलिए चरित्र गठन और अच्छे संस्कारों को पनपाने की दिशा में ध्यान देने की अत्यधिक आवश्यकता है।

वाणी एक अनमोल है

– वीरमसिंह सुरावा

विचारों के आदान-प्रदान करने हेतु वाणी का बहुत महत्त्व है। मनुष्य ही संसार में एकमात्र ऐसा प्राणी है जो बोलकर अपने विचार व्यक्त कर सकता है। अपने सुख-दुख बाँट सकता है। बालक जब लगभग तीन या चार वर्ष का होता है तब बोलना सीख जाता है। लेकिन क्या बोलना है, कब बोलना है, कैसे बोलना है, यह अधिकतर लोग पूरी जिन्दगी भर नहीं सीख पाते हैं। जो यह बात सीख जाएँ, ऐसे कुछ विरले ही होते हैं, वे महापुरुष कहलाते हैं तथा लोग उनकी बातों का अनुसरण करने का प्रयास करते हैं।

एक शब्द घाव करता है और एक शब्द उपचार, इसलिये सोच समझकर बोलना बहुत आवश्यक है। क्योंकि तलवार के घाव तो कुछ समय में ठीक हो सकते हैं परन्तु वाणी का घाव ऐसा है, जिसे भरना बहुत मुश्किल है। इसीलिए कबीरदासजी ने कहा है,-

बोली एक अमोल है, जो कोई बोलै जानि।
हिये तराजू तोल के, तब मुख बाहर आनि।।

अर्थात् वाणी एक अनमोल है और जो इसे जानता है उसे उस बात को हृदय के दोनों पलड़ों में तोलकर, सोचकर बोलना चाहिए।

वाणी ऐसा हथियार है जिससे हम दुश्मन को मित्र और मित्र को दुश्मन बना देते हैं। इसीलिए कहा गया है-

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।

अर्थात् ऐसे शब्द बोलने चाहिए जिससे दुश्मन भी मित्र हो जाए। तथा जिससे दूसरों को भी शान्ति मिले और स्वयं का मन भी शान्त हो जाए।

वाणी का बहुत महत्त्व है क्योंकि शब्दों के बाण से तो इतिहास में भयानक युद्ध हुए हैं। यदि द्रौपदी, दुर्योधन को यह नहीं कहती कि 'अँधे का पुत्र अंधा' तो शायद महाभारत का युद्ध नहीं होता। यदि हम मुँह को एक पेड़ मानें तो जिह्वा को उस पेड़ पर रहने वाला पक्षी मान सकते हैं। जब पक्षी बोलता है, तब पता चलता है कि उस पेड़ पर रहने वाला पक्षी कोयल है या कौआ।

मधुर वचन बोलने वाले को सब पसन्द करते हैं। अतः मधुर वचन बोलने चाहिए, क्योंकि हमारे जाने के बाद हमारी बातें शेष रह जाती हैं, जिससे लोग हमें याद करते हैं।

✻

जब तक कुछ असाधारण न हो, तब तक प्रभाव नहीं बनता। कभी-कभी सीधी सादी वेशभूषा भी प्रभावशाली लगती है, लेकिन वह भी सीधे और सादेपन की असाधारणता ही होगी। साधारणताएँ भी असाधारण होने पर प्रभावशाली बनती हैं। जिन पर प्रभाव डालना है। उनकी विशिष्टिताओं को सीखना बेकार है, क्योंकि उनका सहारा लेने पर वे हमें भी साधारण लोगों की श्रेणी में ला पटकेंगे। उन लोगों के अभावों की हमारे भीतर विपुलता होगी तभी सही अर्थों में सफल लोकसंग्रह हो सकेगा।

– पू. तनसिंहजी

अपनी बात

किसी संत ने कहा है–'जो तत्व, जो सत्य मूढजनों के लिये अगोचर है वह पंडितों के लिये भी अगम्य है।' यहाँ पंडितों का अर्थ है जिनको ज्ञान का, जानकारी का अहंकार है। यहाँ मूढ में और पंडित में जरा भी भेद नहीं माना है। अगर कोई भेद है तो यही कि पंडित मूढ से भी सत्य प्राप्ति के लिये कुपात्र है। मूढ को कम से कम यह पता है कि मैं मूढ हूँ, इससे एक विनम्रता प्रकट होती है, एक निरहंकारिता प्रकट होती है। वह जानता है कि मेरी क्या पात्रता है, मेरी क्या योग्यता है। लेकिन पंडित, जिसे जो छिछली जानकारी है, उसी का अहंकार पाले बैठा है, वह सत्य की खोज के लिये अपात्र है। मूढ तो सिर्फ अपात्र है लेकिन खाली है। पंडित अपात्र ही नहीं कुपात्र है। मूढ पर तो ज्ञान की वर्षा होगी तो वह भर जायेगा। पंडित पर ज्ञान की वर्षा होगी तब भी वह कुछ प्राप्त न कर पाएगा क्योंकि वह उस छिछली जानकारी से पहले से भरा है। उसमें तो कुछ भरने की जगह ही नहीं है। संघ में यह अनुभव होता ही रहता है कि जो ऐसा मानता है कि मैं बहुत कुछ जानता हूँ, वह संघ से कुछ पा नहीं सकता। लेकिन जिसका पात्र खाली है, जो विनम्र हैं, जो जानता है कि मैं कुछ नहीं जानता, वह बहुत कुछ ग्रहण कर लेता है।

जो लोग सत्य प्राप्ति की यात्रा पर चले हैं, वे अगर अज्ञानी हों तो उतना हर्ज नहीं, लेकिन पंडित (अधकचरी जानकारियों का अहंकार पालने वाला) नहीं ही होने चाहिए। पापी हों, चलेगा; पंडित हों, नहीं चल सकता। पापी क्षमा माँग सकता है और क्षमा किया जा सकता है। लेकिन पंडित क्षमा ही नहीं माँग सकता, तो क्षमा कैसे किया जा सकता है। पापी झुक जाता है, जानता है कि पापी हूँ। पंडित झुक नहीं सकता, उसकी अकड़ भयंकर है।

इस जगत में धन की भी अकड़ इतनी नहीं होती और पद की भी इतनी अकड़ नहीं होती, जितनी पांडित्य की होती है। पांडित्य इस जगत में अहंकार का जितना बहुमूल्य आभूषण है, उतनी कोई और चीज नहीं। उसके पास क्या है? शब्द हैं, थोथे शब्द हैं, जो उसने सीख लिए हैं और उन्हें ही दोहराता रहता है।

सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान व्यक्ति को होता है, जिस पर कि सद्‌गुरु प्रसन्न होते हैं। पांडित्य से नहीं होता सत्य का साक्षात्कार, गुरु के प्रसाद से होता है। गुरु का प्रसाद किसको मिलता है? उसी को ही गुरु का प्रसाद मिलता है जो अहंकार को समर्पित करता है। मूल बात यह हुई कि जो व्यक्ति अहंकार को छोड़ देता है, उसे सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। गुरु तो अहंकार छोड़ने की सिर्फ एक प्रक्रिया है, एक निमित्त है। बिना गुरु के, अहंकार छोड़ने में कठिनाई होती है, इसलिये गुरु की आवश्यकता है। अगर कोई गुरु के बिना भी अहंकार छोड़ सके तो गुरु के बिना भी घटना घट सकती है। मगर अति कठिन है। किसी के चरणों में सिर रखने का अवसर हो तो कोई रख दे। कोई चरण ही न हों तो सिर कहाँ रखे? इसलिए गुरु की आवश्यकता रहती है। सत्य मिलता उन्हें है जो विनम्र हों। विनम्रता कहाँ से सीखी इससे कोई भेद नहीं पड़ता लेकिन गुरु के बिना अहंकार छोड़कर विनम्रता पाना अति कठिन है।

सद्‌गुरु तो सदा प्रसन्न ही रहता है। फिर यह कहने का तात्पर्य क्या है कि उसी को मिलता है जिस पर सद्‌गुरु प्रसन्न हो? सद्‌गुरु तो ऐसे हैं जेसे सूरज निकला; अब ऐसा थोड़ा ही है कि सूरज किसी पर प्रसन्न होगा, उसके घर पर रोशनी होगी और किसी पर अप्रसन्न होगा, उसके घर पर अंधेरा रहेगा। नहीं, लेकिन कुछ अर्थ है। सूरज तो निकल गया, हमारे द्वार पर भी है, पर हम आँख खोलें तब न। हम आँख बंद किए हुए हैं तो हमारे लिये तो अभी रात ही है। दिन तो उनके लिये है जिन्होंने आँखें खोली। आँख उनकी ही खुलती है जो अहंकार के आवरण को हटा देता है। आँख खुलेगी तभी हम जानेंगे कि सद्‌गुरु प्रसन्न है। सद्‌गुरु तो प्रसाद ही है। प्रकाश के अतिरिक्त सद्‌गुरु और कुछ देता नहीं है। उसके चारों तरफ तो उत्सव की ही तरंग है। उसी में हम तल्लीन हो सकें, लयबद्ध हो सकें तो सद्‌गुरु की प्रसन्नता का अनुभव हो सकेगा।

आँख खोलना अर्थात् अहंकार का आवरण हटाना, जिज्ञासा के पात्र बनना, यह सत्य की खोज की तो यात्रा है ही, संगठन की कड़ी बनने का भी यही मार्ग है। संघ में इस अहंकार के रूपान्तरण हेतु ही विभिन्न खेल, चर्चाएँ एवं प्रवचन हैं। जिज्ञासा का पात्र खाली है तो संघ उसमें भरेगा।

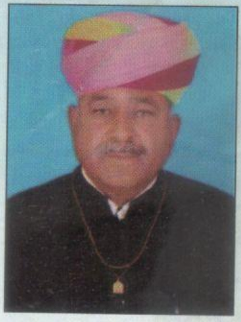

गोपाल सिंह राठौड़
मो. 9929862608

सवाई सिंह राठौड
मो. 9413256246

अनोप सिंह राठौड़
मो. 9414130605
मो. 9252032937

सवाई एग्रो ट्रेडर्स
बस स्टेण्ड भोपालगढ़
जिला जोधपुर (राज.)

SAWAI AGRO TRADERS
THE SYMBOL OF TRUST

सवाई एग्रो एजेन्सी
बस स्टेण्ड औसियां
जिला जोधपुर (राज.)

गोपाल सिंह /
कुंदन सिंह राठौड़
गांव - नाड़सर
तहसील- भोपालगढ़
जोधपुर (राज.)

सरोज पेस्टिसाइडस
एण्ड फर्टिलाइजर्स
बस स्टेण्ड भोपालगढ़
जिला जोधपुर (राज.)

SAROJ PESTICIDES & FERTILISERS
the symbole of quality

मार्च, सन् 2019
वर्ष : 56, अंक : 03

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह